शोध श्री

Volume - II No. 1 January - March 2012

अनुक्रम

1. पत्रकार की सामाजिक चुनौतियाँ एवं जिम्मेदारियाँ
डॉ. अनिल कुमार सक्सेना
2. मानवाधिकार और शिक्षा
डॉ. पंकज गुप्ता, देशराज यादव, डॉ. अर्चना बंसल
3. हिन्दी मीडिया के रूप में दूरदर्शन की सामाजिक उपादेयता और रोजगार
डॉ. लता शर्मा
4. गोलपुर के शैलचित्रों का पुरावैभव
वीरेन्द्र शर्मा, डॉ. रवीन्द्र टेलर
5. अस्मितामूलक पत्रकारिता का संकट एवं चुनौतियाँ
डॉ. सुभाष चन्द्र दीक्षित
6. वर्तमान आर्थिक समस्याएं और गाँधी
डॉ. भरतलाल मीणा
7. सम्प्रेषण का सशक्त अस्त्र ब्लॉग लेखन
डॉ. राजरानी शर्मा
8. विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा एवं भारत
सूर्य प्रकाश शर्मा
9. मीडिया और प्रमुख संचार माध्यम : इंटरनेट
अस्मा जावेद
10. वैश्वीकरण : भारत के संदर्भ में परिप्रेक्ष्य और चुनौतियाँ
सुमित्रा सिंह, डॉ. राजेन्द्र सिंह, डॉ. महिपाल सिंह
11. अनुभूतियों के आईने में व्यक्तित्व की तलाश : मोहन राकेश के विभिन्न प्रयास
प्रो. सन्दीपना शर्मा
12. मानव अधिकार : अवधारणात्मक आयाम
शैफाली जैन

13. 'परीक्षा गुरू' में उद्धृत उपदेशात्मकता के विदेशी प्रसंग व उनकी प्रासंगिकता
डॉ. एच. एल. धीमान
14. भारतीय जनजातियों की राजनीतिक एवं संवैधानिक व्यवस्था
अशोक कुमार छाछिया
15. नवोन्मेष के पथ पर हिन्दी सैलानी लेखक
डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी
16. सामाजिक लागत लेखांकन
संजय कुमार
17. आत्माभिव्यक्ति का श्रेष्ठ मंच–ब्लॉगिंग
डॉ. ऋता दीक्षित
18. 73वां संविधान संशोधन एवं पंचायती चुनाव : हरियाणा राज्य के संदर्भ में
डॉ. छैलबिहारी, डॉ. सविता दिवेश
19. वैश्विक परिदृश्य और मीडिया की अनिवार्यता
डॉ. ऋतु दीक्षित
20. **Mobile banking - An Insight and Indian Perspective**
Dr. Vikash Bairathi
21. **A Reflection of Indian women in entrepreneurial world**
Deepshikha Parashar
22. **Water Harvesting and Conservation : A Study of medieval time**
Dr. M.L. Sharma, Mrs. Bindu Tiwari
23. **Indian Democracy : Reality and Challenges**
Dr. Ajay Vardhan Acharya
24. **Key Success Factors for Knowledge Management**
Vandana Sachdeva
25. **The Strategic Implications of Enterprise Risk Management : A Framework**
Dr. Sachin Gupta

पत्रकार की सामाजिक चुनौतियाँ एवं जिम्मेदारियाँ

डॉ0 अनिल कुमार सक्सेना
डी0 लिट्0,एसो0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग,
जवाहर लाल नेहरू कालेज, एटा (उत्तर प्रदेश)

सभी शासन–प्रणालियों में लोकतन्त्र पावनतम शासन प्रणाली है। पत्रकारिता अथवा मीडिया इस लोकतन्त्र का चतुर्थ एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण स्तम्भ है। लोकतन्त्र मात्र सैद्धान्तिक रूप से ही आदर्श प्रणाली बना रहेगा, यदि मीडिया की भूमिका सजग प्रहरी की न हो। व्यवहार में लोकतन्त्र को सफल बनाने में पत्रकार की भूमिका अद्वितीय होती है। कदाचित् पत्रकार के साथ–साथ सरकारें और राजनेता ईमानदार हों जायें, तो कोई कारण नहीं कि धरती पर रामराज्य न आ जाये। इसलिए पत्रकार का यह पुनीत दायित्व हो जाता है कि वह निर्भीक होकर सत्य को उजागर करे।

वस्तुतः, इसी सच को उजागर करना पत्रकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करना 'अंगारों पर चलना' है। इसी अग्निपथ के अनेक साहसी पथिकों को अपनी स्वच्छ छवि वाली पत्रकारिता की सुरक्षा–संरक्षा हेतु प्राणों की आहुति देनी पड़ी है। 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र के स्वामी लाला जगतनारायन का उत्सर्ग इसका एक नमूना मात्र है।

राजनीतिक चुनौतियों और जिम्मेदारियों के अतिरिक्त सामाजिक चुनौतियाँ और जिम्मेदारियाँ भी पत्रकारिता का परमधर्म हैं। इस धर्म का परिपालन पत्रकार की स्वतःस्फूर्त अन्तःचेतना से नियन्त्रित होता है। यह चेतना अनुभूति और अध्ययन की आँच में तपकर जब निखरती है, तब पत्रकार की लेखनी से 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की सृष्टि होती है। ऐसे स्वनामधन्य पत्रकारों का एक लेख ही सरकारों की चूलें हिलाने को पर्याप्त होता है। इसलिए पत्रकार की सामाजिक चुनौतियों एवं जिम्मेदारियों का फलक बहुत व्यापक है। इस सन्दर्भ में संस्कृत के कवि भर्तृहरि के दो श्लोक पत्रकार और पत्रकारिता के मर्म और धर्म का मार्मिक उद्घाटन करते हैं। अन्योक्ति के रूप में प्रस्तुत ये श्लोक 'हंस' के नीर–क्षीर विवेक की स्थापना करते हैं। 'नीति–शतक' ग्रन्थ में मानव–जीवन के सभी पक्षों को समाहित करते हुये कवि ने बहुत सुन्दर आचार–संहिता का विधान किया है। वे लिखते हैं –

"अम्भोजिनी वन विहार–विलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजल भेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्य कीर्तिमपहर्त्तुमसौ समर्थः।।"[1]

अर्थात् हंस से रुष्ट होकर विधाता उसका क्या बिगाड़ लेगा? अधिक से अधिक उसके कमलवन में विहार के साधन नष्ट कर देगा। कमलों को नष्ट कर देगा, सरोवरों को सुखा डालेगा।

किन्तु उसके विश्वविख्यात 'नीर–क्षीर पृथक्करण' रूपी गुण–कौशल को छीनने की सामर्थ्य भगवान् में भी नहीं है। वस्तुतः, यही धर्म पत्रकार का है। वह कभी किसी दबाव का अनुभव न करे। उसको कोई भौतिक नुकसान पहुँचाने की कोशिश तो अवश्य करेगा, क्योंकि सहिष्णुता का भाव तो लुप्त हो चुका है। सामाजिकों को यह आत्मालोचन करना होगा कि यदि पत्रकार ने किसी सच का प्रकाशन किया है, तो उसे सहर्ष अंगीकार किया जाय। उसने तो अपने धर्म को ही निभाया है न। तब पत्रकार के प्रति आक्रोश प्रकट करना, उसे हानि पहुँचाना, उसे सबक सिखाने की ज़िद ठान लेना सर्वथा पाप है। भर्तृहरि ने एक और श्लोक में हंस को उपालम्भ देते हुए पत्रकार को उसके पुनीत दायित्व का स्मरण कराया है –

"नीर–क्षीर विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुशे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्यः कुलव्रतं पालयिश्यति कः।।"[2]

अर्थात् हे हंस! नीर–क्षीर विवेक का जो तुम्हारा विश्वविश्रुत गुण–धर्म है, उसके परिपालन में तुम्हीं यदि आलस्य करोगे, तो संसार में अपने 'कुलव्रत' का पालन कौन करेगा? इसी प्रकार पत्रकार के लिए सच को उजागर करना ही उसका 'कुलव्रत' है। साथ ही यह 'कुलव्रत' एक 'असिधारव्रत' भी है। तलवार की धार पर चलने का प्रण। पल–पल चुनौतियाँ, कदम–कदम ख़तरे। पूर्व में जिन लाला जगत नारायण का उल्लेख किया गया है, उनके समाचार–पत्र 'पंजाब केसरी' ने पंजाब के आतंकवाद के विरोध में जमकर सच को उजागर किया। यद्यपि इस 'कुलव्रत' के परिपालन की कीमत उनके व उनके परिवार के तथा पत्र–समूह के लगभग 70 लोगों के प्राण गँवाकर चुकानी पड़ी। पत्र आज भी गौरव के साथ खड़ा है।

उक्त एक घटना का उल्लेख तो मात्र एक उदाहरण है। अनेक देशों के पत्रकारों की बड़ी संख्या इस प्रकार के उत्सर्ग कर चुकी है। उन घटनाओं को स्मरण कर हृदय दहल उठता है। उन पत्रकारों की साहसिक प्रवृत्ति को कोटि–कोटि नमन। उत्सर्ग की ये गाथाएँ मीडिया का वन्दन–अभिनन्दन हैं। लेकिन इसका ये आशय कदापि नहीं कि पत्रकारों पर होने वाले प्राणघातक आक्रमण, उन्हें सबक सिखाने की कुचेष्टाएँ इसलिए अंगीकार कर ली जायें, कि पत्रकारिता जगत् का माथा ऊँचा होगा! कदापि नहीं, इन कुप्रवृत्तियों की तीव्र भर्त्सना की जानी चाहिए। पत्रकारों को पूर्ण सुरक्षा दी जानी चाहिए। सम्पूर्ण समाज को, कानून को पत्रकार की सुरक्षा–संरक्षा की गारण्टी देनी चाहिए।

पत्रकार के इस धर्म–कर्म का दूसरा प्रमुख पक्ष है निष्पक्षता एवं लोकहित। पत्रकार जब भी अपनी लेखनी उठाये अथवा सच को दिखाये, तब वह लोकहित का अवश्य ध्यान रखे। उसकी पत्रकारिता किसी निरपराध को अपराधी सिद्ध करने की न हो। सामाजिक मूल्यों का, पारिवारिक मूल्यों का क्षरण न हो। क्योंकि 'सत्य' की भी एक मर्यादा है, मानदण्ड है। हमारे शास्त्र तो स्पष्टतः विधान करते हैं –

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एव धर्मः सनातनः।।"[3]

अतएव, पत्रकार को यह धर्म सतत निभाना होगा कि किसी भी व्यक्ति एवं परिवार की प्रतिष्ठा तब तक तार–तार न की जाय, जब तक कि ऐसा करना अपरिहार्य न हो, अथवा वह व्यक्ति इतना निन्दनीय हो। कभी–कभी किसी निरीह परिवार की बहन–बेटी की इज्जत ऐसी उछल जाती है कि उसकी भरपाई कभी नहीं हो सकती। मान लीजिए, किसी महिला के साथ बलात्कार हुआ, अपराधी को दण्डित कराने हेतु मीडिया तथा हर सामाजिक को तत्पर रहना होगा। ऐसा न हो कि उत्पीड़ित महिला की सामाजिक छवि को मिटाने का धारा–प्रवाह लेखन–प्रकाशन चलता रहे। हमारे यहाँ इस प्रकार की पत्रिकाएँ भी निरन्तर छप रहीं हैं। पत्रकारिता का ये वीभत्स रूप नहीं तो और क्या है? इसीलिए पत्रकारिता–मनीशी लोकेश गुर्जर आक्रोश व्यक्त करते हैं। उन्होंने मीडिया की इस प्रवृत्ति की भी कटु आलोचना की है कि पत्रकार या मीडिया समाज में भय का वातावरण तैयार करता है। इस भय की आड़ में धनोपार्जन कर पत्रकारिता के प्रकल्प–संकल्प को दूषित करता है। इसीलिए लोकेश गुर्जर पत्रकारिता को एक क्रान्ति के रूप में ग्रहण करने का परामर्श देते हैं।

न केवल पत्रकार को, अपितु सम्पूर्ण मीडिया जगत् को यह सदैव स्मरण रखना होगा कि आज मीडिया बहुत व्यापक हो गया है। पूरा वैश्विक परिदृश्य मीडिया के नियन्त्रण में है। प्रिंट मीडिया, इलैक्ट्रोनिक मीडिया, सिनेमा, टेलीफोन, इण्टरनेट, सेटेलाइट के माध्यमों ने अपनी शक्ति एवं सार्थकता को सिद्ध तो किया ही है, अपना प्रभाव भी प्रमाणित कर दिया है। हमारी सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक विरासत आज मीडिया के हाथ में है। अतः सांस्कृतिक प्रदूषण को रोकना मीडिया की अन्यतम जिम्मेदारी है, चुनौती भी है। पत्रकारिता–विशेषज्ञ महादेव देसाई उस युग की पत्रकारिता का भावपूर्ण स्मरण करते हैं, जब पत्रकारों का पत्रिकाओं और पत्रों के प्रति सर्वस्व समर्पण का भाव रहता था। वे मानते हैं कि गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, राजा राममोहन राय जैसे व्यक्तित्व पत्रकारिता जगत् के अमूल्य रत्न रहे हैं, तब पत्रकारों के समक्ष उस आदर्श को अपनाना अपरिहार्य हो जाता है। इन लोगों ने क्रान्ति को जो समर्थ वाणी दी थी, स्वतन्त्रता उसी का परिणाम है। अतः अपने उद्देश्य पर अर्जुन जैसी दृष्टि गढ़ानी होगी पत्रकार को। अन्यथा लोकेश गुर्जर का यह वक्तव्य अक्षरशः सत्य क्यों नहीं मान लिया जाय –

"और अब का पत्रकारिता का दौर ऐसा दौर है, जहाँ सिर्फ चाटुकारिता की पत्रकारिता होने लगी है! जहाँ आगे निकलने की होड़ में उजुल–फिजूल छापने की होड़, तो कहीं अपने आपको सबसे तेज और श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अन्धविश्वास और बिना पुष्टि के खबर चलने की होड़। कुछ तो दुनिया खत्म और भूत–प्रेत चलाने से भी पीछे नहीं रहते। पत्रकारिता का असली कर्त्तव्य कहीं विलुप्त सा हो गया है। रही सही कसर कुकरमुत्ते की तरह उगे टीवी चैनल पूरा कर रहे हैं। सिर्फ एक या दो टीवी चैनल को छोड़ दें, तो बाकी मुन्नी बदनाम, या दुनिया खत्म होने को ही अपनी लीड स्टोरी मानते हैं। हद तो तब हो गयी जब उपायुक्त के पालतू कुत्ते के खो जाने की खबर दिन भर चलती रही। ऊपर से पेड–न्यूज नाम का कैंसर भी मीडिया की विश्वसनीयता को लगातार खोखला किये जा रहा है।"[4] अपने इस आक्रोश को व्यक्त करने के उपरान्त कलंकित–भविष्य से बचने हेतु लोकेश सचेत करते हैं– "आने वाले टाइम में भी अगर पत्रकारिता का यही हाल रहा तो आम आदमी का नेताओं की तरह पत्रकारों से भी

विश्वास उठ जायगा। एक आम आदमी होने के नाते मैं तो बस भगवान् से यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि भगवान् मीडिया को सद्बुद्धि दे।"[5]

मीडिया पर प्रायः किसी की व्यक्तिगत छवि को धूमिल करने का भी आरोप लगता है। तथ्यात्मक रूप से सही होने पर भी उसे यथावत् छापना अखबार के लिए अशोभनीय होता है। इसीलिए एक 'अफलातून' ब्लॉगर लिखते हैं कि "किसी भी व्यक्ति के बारे में निहायत जाती किस्म की खबर बिना पुष्टि के स्वीकारनी ही नहीं चाहिए, पुष्टि हो, तब उसकी बारीकी से जाँच कर लें कि वह सच है या झूठ, जाँच के बाद यदि खबर सच पाई जाय, तब उसे छापने पर जनता का हित होगा या अहित, यह विचार कर तब उसे छापा जाए अथवा न छापा जाए। इस सामान्य सी नीति का पालन क्या दुष्कर और दुरूह है?"[6]

निष्कर्षतः, पत्रकारिता एक पुनीत कर्म है, जिसमें निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा और राष्ट्र–आराधना के स्वर समवेत रूप से गूँजते हैं। इन स्वरों में लोक–हित की भागीदारी का कल–कल निनाद वातावरण को, समूचे युग को पावनता का, निर्भीकता का, संशय रहित जीवन का सन्देश देता है। जिस दिन पत्रकार सामाजिक चुनौतियों और अपनी जिम्मेदारियों का उक्त भाव से निर्वाह करेगा, भारत का लोकतन्त्र विश्व के लिए अनुकरणीय बन जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति : नीतिशतकम्, श्लोक संख्या 18।
2. वही, श्लोक संख्या 21।
3. मनुस्मृति, 4/138।
4. महादेव देसाई, 09 अक्टूबर, 2007।
5. वही, 09 अक्टूबर, 2007।
6. ब्लॉगर अफलातून, दि 18 अक्टूबर, 2007।

***

Volume - II January - March 2012 ISSN 2277-5587

मानवाधिकार और शिक्षा

डॉ. पंकज गुप्ता
व्याख्याता राजनीति विज्ञान,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली
देशराज यादव
व्याख्याता राजनीति विज्ञान,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली
डॉ. अर्चना बंसल
प्राध्यापिका राजनीति विज्ञान

मानवाधिकार मानवीय प्रगति व सामाजिक विकास से सम्बद्व ऐसे उत्कृष्ट अधिकार है जो मनुष्य को न केवल मनुष्य के रुप में अपितु सम्पूर्ण समाज के सदस्य के रुप में भी सांस्कृतिक, नैतिक व भौतिक उन्नति के अवसर प्रदान करते है। ये अधिकार मानव के जीवन स्वतन्त्रता, समानता, गरिमा, सौहार्द्व और न्यायिक अभिधारणाओं को उजागर करने के साधन है। वस्तुतः मानवीय अधिकार स्वयं में अन्तर्निहित, अपृथक्करणीय एवं वैश्विक है। मानवता के बारे में मानव समाज में विभेद हो सकता है क्योंकि अपने विकास के चरण में मानव समाज कई तरह की प्रस्थिति एवं स्तर के रुपो में विकसित हुआ है लेकिन इसके बावजूद भी संतुलित विकास एवं समतावादी समाज की स्थापना करना मानव अधिकारों का उद्देश्य रहा है। अतः उनके स्वाभाविक और सम्यक् प्रवर्तन के लिए प्रजातंत्र के स्तम्भो के रुप में कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका तथा प्रचार साधनों के साध्य हेतु कार्य करना मानवाधिकारों की सहज और समुचित मांग है। इस प्रकार मानव अधिकारों के संरक्षण का सिद्धान्त व्यक्ति की अवधारणा से और उसका सम्बन्ध संगठित समाज में रहनें के कारण उत्पन्न होता है।

मानव अधिकार स्वतंत्र समाज के गरिमायुक्त जीवन को संचालित करने के मानकों को सरकार के माध्यम से प्रवर्तित कराने के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते है। इस के लिए संविधान एक यंत्र के रुप में कार्य करता है। स्वाभाविक प्रकृति की दृष्टि से मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ये अधिकार व्यक्तियों के सम्मानपूर्ण जीवन के लिए अपरिहार्य है।

मानव अधिकार शिक्षा :— अर्थ एवं संकल्पना

मानव अधिकार शिक्षा को शिक्षा, प्रशिक्षण और मानव अधिकारों की एक सार्वभौमिक संस्कृति के निर्माण के लक्ष्य की जानकारी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मानव अधिकारों की व्यापक शिक्षा न केवल मानव अधिकारों तथा उनके संरक्षण के तन्त्र की जानकारी उपलब्ध कराती है अपितु प्रोन्नयन, संरक्षण एवं दैनिक जीवन में मानवाधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक कौशल भी प्रदान कराती है। मानवाधिकार शिक्षा समाज के सभी सदस्यों के मानव अधिकारों की रक्षा की जरूरत के दृष्टिकोण एवं व्यवहार को बढावा देती है।

एमनेस्टी इन्टरनेशल के अनुसार मानव अधिकार शिक्षा 1948 की मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं प्रसंविदाओं में उल्लेखित मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्वता की आवाज है। ये सभी लोगों के मानव अधिकारों के सम्मान, प्रोन्नयन तथा संरक्षण की जिम्मेदारी का दावा है।

मानव अधिकार शिक्षा लोकतान्त्रिक सिद्वान्तों को संवर्द्वित करती है। यह मानव अधिकारों के मुद्दों की बिना किसी पूर्वाग्रहों से परख करती है।मानव अधिकार शिक्षा लोकतन्त्र के लिए आवश्यक सम्प्रेषण कौशल एवं समालोचनात्मक सोच विकसित करने में मदद प्रदान करती है। सारतः मानव अधिकार शिक्षा एक प्रक्रिया है जो लोगों को सहयोगात्मक एवं अन्तःक्रियात्मक ढांचे के अन्तर्गत अपने तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति संज्ञान उत्पन्न करती है। मानव अधिकार शिक्षा में खोजपरक एवं प्रभावी शिक्षक के विस्तृत कार्यक्षेत्र का समावेशन है। यह मानवाधिकारो की सार्वभौमिकता एवं अविभाज्यता को मान्यता देती है, मानवाधिकारो के प्रति समझ एवं ज्ञान को बढ़ावा देती है, लोगो को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सशक्त बनाती है, लोगों को मानवाधिकारों के संरक्षण एवं प्रवर्तन हेतु कानूनी तरीकों के प्रयोग में सहायता, संवादो एवं परिवर्तन के लिए स्थान सृजन करती है तथा सम्मान एवं सहिष्णुता को प्रोत्साहित करती है।

मानव अधिकार शिक्षा के उद्देश्य

मानव अधिकार शिक्षा के मुख्य उद्देश्य अग्रांकित हैः–

1 मानवाधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रता के प्रति सम्मान का सुदृढीकरण,

2 मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और गरिमा की समझ विकसित करना,

3 समस्त राष्ट्रों, देशज लोगों तथा नस्लीय, राष्ट्रीय, नृजातीय,धार्मिक एवं भाषागत समूह के मध्य समझ, सहिष्णुता, लैगिंक समानता को बढ़ावा देना,

4 विधि के शासन द्वारा संचालित लोकतान्त्रिक मुक्त समाज में सभी व्यक्तियों को प्रभावी सहभागिता हेतु सक्षम बनाना,

5 शांति निर्माण एवं उसकी उपलब्धता बनाए रखना,

6 व्यक्ति केन्द्रित सतत विकास एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।

मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता

आधुनिक युग वैज्ञानिक होने के कारण औधोगिक विकास एवं उन्नति के साथ–साथ मानवीय मूल्यों का लगातार पतन होता जा रहा है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों का लगातार उल्लंघन हो रहा है। दूरसंचार के साधनों के विकास के साथ ही पड़ौसी राष्ट्र समीप आते जा रहे है जिसके कारण परस्पर आक्रमण, हिंसा आतंकवाद, हथियारो की होड़, साम्राज्यवाद व विस्तार लिप्सा की भावना से पीड़ित होकर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी धाक जमाकर स्वयं को शक्तिशाली प्रदर्शित करना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरुप आतंकवाद, जनसंख्या–विस्फोट के कारण उत्पन्न

समस्यायें अशिक्षा, गरीबी, आर्थिक असमानता, अन्याय, अपहरण, उत्पीड़न, भय, भ्रष्टाचार दुराचार, तलाक आदि कुत्सित भावनाओं की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। मानव मूल्यों के निरन्तर पतन के कारण सामाजिक जीवन की सुख–शांति विश्रृंखलित हो उठी है।

मानव अधिकार शिक्षा एक अत्यधिक प्रेरणादायक एंव व्यावहारिक अवधारणा है। सभी मनुष्यों का आदर्श एवं अवतरित आशा है जो लोगों को उन्हें प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाती है। मानव अधिकार शिक्षा उन प्रेरणादायक एवं व्यावहारिक पहलुओं का एक भाग है। यह मानकों का समुच्चय है लेकिन साथ ही परिवर्तन भी लाती है। प्रभावी मानव अधिकार शिक्षा मूल्यों एवं दृष्टिकोण में बदलाव ला सकती है, व्यवहार में परिवर्तन कर सकती है, सामाजिक न्याय का सशक्तिकरण कर सकती है, मुद्दों, समुदायों और देशों के मध्य एकजुटता के नजरिए का विकास कर सकती है।

ज्ञान और विश्लेषणात्मक कौशल विकास तथा सहभागिता युक्त शिक्षा को प्रोत्साहित कर सकती है। अतः मानव अधिकारों की शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का बोध करा जागरूक बना कर मानव अधिकारों को संरक्षित किया जा सकता है।

मानव अधिकार शिक्षा

मानव अधिकार शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व शारीरिक क्षमताओं और विचारों को विकसित कर श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण करती है। इसलिए मानव अधिकार शिक्षा व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय सभी स्तरों पर दिये जाने की महती आवश्यकता है। मानव अधिकार शिक्षा प्रदान किये जाने का सबसे आधारभूत व महत्वपूर्ण स्तर विद्यालय है जहाँ पर बच्चों में सर्वप्रथम मूल्यों और संस्कारो की नींव रखी जाती है। विद्यालयों में मानव अधिकार शिक्षा प्रदान करने हेतु अग्रांकित कदम उठाये जा सकते हैः–

1 मानव अधिकारों को विशेष विषय के रूप में या नागरिक शिक्षा के एक विशेष भाग के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।

2 मानव अधिकारों को सभी विषयों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

3 पाठयेत्तर गतिविधियॉं, क्लब जैसे एमनेस्टी इन्टरनेशनल समूह का गठन विद्यालय में होना चाहिए।

4 विद्यालय में निम्नलिखित लक्ष्यों को अपनाया जाना चाहिए–

- शिक्षकों को विद्यालय जीवन एवं पाठयक्रम में मानव अधिकारों को लागू करना चाहिए।
- कक्षा कक्ष में आपसी रिश्तों का आधार मानव अधिकार होने चाहिए।
- विद्यालयों के नियम एवं अनुशासनात्मक प्रक्रियायें भेदभाव रहित एवं उचित होनी चाहिए।
- विद्यालय के द्वारा लिंग, नस्ल और निःशक्तता के आधार पर भेदभाव को समाप्त कर समानता का वातावरण बनाना चाहिए।

- शिक्षकों को वैश्विक परिपेक्ष्य विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- पूर्व प्राथमिक स्तर पर बच्चों को खेल–खेल में मानवाधिकारों की शिक्षा दी जा सकती है। शिक्षाप्रद कहानियों, गीतों एवं कविताओं के माध्यम से उचित संस्कार डाले जा सकते है।
- प्राथमिक स्तर पर शिक्षक मानवाधिकारों से संबंधित इतिहासप्रद कहानियों, बाल साहित्य एवं पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से मानव अधिकार शिक्षा प्रदान कर सकते है।
- माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी का जीवन चिंतन, मनन व कार्य विद्यालयीय व्यवहार को सही रूप देकर भावी व्यक्तित्व के निर्माण के लिए प्रस्तुत होता है। इस स्तर पर पाठयक्रम मानवीय संवेदना जाग्रत करने वाला होना चाहिए। पाठेयतर गतिविधियों के माध्यम से भी विद्यार्थियों को मानव अधिकारो के महत्व तथा उसके संरक्षण के उपायों को सिखाया जा सकता है।

5 महाविद्यालय स्तर पर मानव अधिकारों का सैद्वान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यवहारिक महत्व प्रदान करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि विद्यार्थी अब सामाजिक कर्म भूमि मे अपनी सेवाये देने के लिए तैयार हो जाता है जहाँ उसे मानवाधिकारों के संरक्षण की भूमिका का निर्वहन करना होगा।

अतः यह जरूरी है कि जब वह अपनी महाविद्यालय शिक्षा पूर्ण कर समाज में अपनी भूमिका निर्वाह करे तो उसे मानव अधिकारों एवं उनके संरक्षण तथा संस्थागत उपागमों की पूरी जानकारी हो। इस स्तर पर मानव अधिकारों की स्थापना हेतु स्वतंत्र वातावरण होना चाहिए ताकि विद्यार्थी अधिकारों के प्रति जागरुक हो सके। साथ ही विश्व स्तर पर मानव अधिकारों के उल्लंघन एवं संरक्षण पर विचार गोष्ठियों तथा कार्यशाला का महाविद्यालय स्तर पर आयोजन किया जाये।

सारतः मानव अधिकार शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव अधिकारों एवं उनके संरक्षण के तन्त्र के बारे में ज्ञान प्रदान करती है। साथ ही मानव अधिकारों को दिन प्रतिदिन के जीवन में लागू करने के कौशल को अर्जित करने की योग्यता विकसित करती है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जहाँ हिंसा, गृहयुद्ध, नस्लीय हिंसा,जातीय दंगे, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद इत्यादि सम्पूर्ण मानव जाति के मानव अधिकारों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत कर रहे है। ऐसे में मानव अधिकार शिक्षा वह अचूक शस्त्र है जो एक ओर लोगों को मानव अधिकारों के प्रति जागरुक बनाती है वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों के सम्मुख चुनौतियों के प्रत्युतर में स्थापित मानव अधिकार संस्थागत उपागमों के बारे में जानकारी प्रदान करती है जिससे मानव अधिकारों को पुनः प्राप्त किया जा सके।

मानव अधिकार शिक्षा आधुनिक सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण आधार बन कर उभरी है जिसका फैलाव सर्वत्र होना चाहिए तभी एक स्वतन्त्र व मुक्त वातावरण की रचना संभव होगी।

 ISSN 2277-5587

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Plan of action of the united nation decade for humanrights eduction (2005-2007).
2. Shiman, David, Teaching human rights(denver: center for teaching International realation ,1986:2nd education; teaching about human rights,(1999)
3. Towards a pedagogy of human of human right education lacatalina, costarica, International consulation on the pedagogical foundation of human rights education,1996
4. Rashid, Abbas, "Human rights and Education", paper prepared for OSI educition confernce 2005.
5. Shende, Haridas Ramji, "Human rights and eduction",Shahitya Chandrika prakshan, Jaipur, 2006.
6. Kurvey, Balkrishan, "Human rights Education in India; needs and future action" , Human rights Education in Asian schools volume- II.
7. UNESCO, Human right Education at the heart of quality Education: A rights based approach to quality Education.
8. General assembly Resolution 49/184, 23 dec. 1994.

9 तलसरा हेमलता एवं पंचौली नलिनी, ''मानव अधिकार एवं शिक्षा''

10 शर्मा, गोपाल ''मानव अधिकार और हम भारतीय''

***

हिन्दी मीडिया के रूप में दूरदर्शन की सामाजिक उपादेयता और रोजगार

डॉ० (श्रीमती) लता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
बैकुंठीदेवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बालूगंज, आगरा

विज्ञान प्रौद्योगिकी और सूचना क्रान्ति के दौर में जीवन का पासा पलट गया है। क्षणों में त्वरित गति से बदलाव अब मनुष्य के वश में हो गया है। इसलिए पल–पल जीवन में नवीनता का उन्मेष करने वाले साधन मनुष्य की जीवन की गतिशीलता का आभास दिला रहे हैं। संसार की एक–एक घटना, एक–एक पल मीडिया के द्वारा स्थायी बनाया जा रहा है। जहाँ नवीनता का उन्मेष है वहाँ–वहाँ उसे चिरस्थायित्व प्रदान करने के साधन भी। दूरसंचार का नाम देकर हमने उसे और चमत्कारमय बना दिया है। जहाँ कई तार जुड़ा हुआ दिखायी नहीं देता लेकिन जीवन के तार बड़ी दृढ़ता से जुड़े हैं। इसमें आदर्श कला के सूत्र, उत्तम व्यवसाय और मानव चेतना का सम्यक् योग है। डॉ. अर्जुन तिवारी के अनुसार–''युग बोध के प्रमुख तत्त्व के साथ ही मानवता के विकास और विचारोत्तेजन का राजमार्ग यही जन संचार है जिससे जीवन अनुप्राणित होता है। समाज संस्कृति साहित्य, दर्शन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार तथा मानव संघर्ष, क्रान्ति, प्रगति, दुर्गतिमय जीवन सागर में उठने वाले ज्वार भाटों का दिग्दर्शित करने में जनसंचार ही सक्षम है। जनता, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के ये सजग प्रहरी जनसंचार के ही साधन हैं जो हमें गरीबी का भूगोल, पूँजीपतियों का अर्थशास्त्र और नेताओं का समाजशास्त्र पढ़ाते हैं। भ्रम, विभ्रम, अविश्वास, अन्धविश्वास, अंधेरगर्दी को मिटाकर असभ्य को सभ्य, संकीर्ण को उदार एवं नर को नारायण बनाने वाले संचार प्रधान ही न्यूनतम घटनाओं के उद्घोषक, वैचारिक आन्दोलन के अभिव्यंजक और नये जीवन–दर्शन के ग्राहक है।''[1]

संचार माध्यमों में क्रान्ति के कारण आज सम्पूर्ण विश्व एक ग्राम के रूप में परिवर्तित हो गया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण हमारी दूरियाँ मिट गयी है। सुपरसॉनिक भी इनती शीघ्रता से नहीं पहुँच सकता, जितनी शीघ्रता से बटन दबाते ही हम दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुँच जाते है। सम्पूर्ण दृश्य जगत मीडिया के माध्यम से दृश्यमान और श्रव्यमान हो गया है। प्राचीन संस्कृति में अलौकिक शक्ति से दूर दृष्टि प्राप्त थी, लेकिन मीडिया के कारण दूरदर्शन से बहुत कुछ श्रव्यमान और दृश्यमान हो गया है। परिणामतः कुछ भी भौतिक जगत में ऐसा दिखायी नहीं देता जो अलभ्य, दुर्लभ और पुनः प्राप्य न हो। दूरदर्शनादि मीडिया के दूसरे पक्षों से भी यह संसार काफी चिन्तित दिखायी दे रहा। समाज शास्त्री, देश के कर्णधारों ने इसके प्रति काफी चिन्ता भी दिखायी है। नैतिक मूल्यों का क्षरण और अपसंस्कृति का प्रभाव अधिक दिखायी देने लगा है–''नवें दशक के मध्य से प्रभाव में आयी सूचना तकनीक के प्रसार का परिणाम यह हुआ है कि भारतीय समाज व्यवस्था ने अपने परम्परागत मानवीय मूल्यों को तो दरकिनार किया ही है। ऐसी अनेक दुष्प्रवृत्तियों का शिकार भी हुई जो एक जीवित संस्कृति के लिए घातक थी। इस दौर में पश्चिम प्रेरित भोगवादी वृत्ति इतनी तीव्रता से फैली कि सम्बन्धों तक की

जड़ें हिल गयीं। टेलीविजन के माध्यम से घर–घर धारावाहिकों और सनसनी खेज कार्यक्रमों का असर यह हुआ कि शब्द संस्कृति ही खतरे में पड़ गयी।''[2]

यह निर्विवाद सत्य है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिन्दी से जुड़ा हुआ और उपयोगी माध्यम दूरदर्शन है। यद्यपि इसके दुष्प्रभाव से चिन्तित सुधी चिन्तकों ने चिन्ता व्यक्त की है। एक ओर दूरदर्शन जहाँ सामाजिक उपादेयता को निर्विवाद सिद्ध कर रहा है वहाँ दूसरी ओर मूल्यों के क्षरण में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। दूरदर्शन के प्रभाव की सार्थकता और प्रभाव उसकी सामाजिक उपादेयता को सिद्ध कर रहा है। सभी संचार माध्यमों की तुलना में दूरदर्शन सबसे अधिक व्यापक और प्रयोजनीय है। यह व्यष्टि से समष्टि तक जोड़ने वाला महत्त्वपूर्ण साधन है। आज संचार साधन नयी विश्वक्रान्ति के स्वरूप को प्रस्तुत कर रहे हैं। दूरदर्शन सामाजिक क्रान्ति का सशक्त माध्यम सिद्ध हो रहा है–''इक्कीसवीं सदी को संचार क्रान्ति या मीडिया युग की संज्ञा दी जा सकती है। प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इण्टरनेट के विस्तार ने वैचारिक क्रान्ति, सामाजिक मान्यताओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं राजनैतिक चेतना के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन का सूत्रपात किया है। इससे समूचा विश्व आज सिमटकर एक गाँव बन गया है, जिस प्रकार 'गाँव में पड़ोस' की खबर रहती थी उसी प्रकार आज विभिन्न राष्ट्रों को एक दूसरे की प्रगति की तत्काल जानकारी मिलती है। ईरान और इराक में युद्ध होता है तो हम अपने ड्राइंग रूप में बैठे उसके गवाह होते हैं।''[3]

दूरदर्शन और हिन्दी मीडिया में अविच्छेद्य सम्बन्ध है। हम अनुभव करते हैं कि सभी देशों के दूरदर्शन अपने देश की भाषा का ही प्रयोग करते होंगे। इसीलिए भारतवर्ष में भी दूरदर्शन से प्रसारित होने वाली सामग्री हिन्दी भाषा के ही विविध रूपों को प्रस्तुत करती है बल्कि आँचलिक भाषाओं, बोलियों और विदेशी भाषाओं के कार्यक्रम भी हिन्दी में प्रसारित किये जाते हैं। इसलिए सैकड़ों की संख्या में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में सर्वाधिक हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। भारत कृषि प्रधान देश है। इसलिए अधिकतम क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। भाषा और दूरदर्शन केवल माध्यम है जो सामग्री प्रसारित की जाती है वह जनता के व्यापक तबके को साथ लेकर प्रस्तुत की जाती है। अधिकांशतः कार्यक्रम के द्वारा जनसाधारण के जीवन संघर्षों को नया आयाम देना, साामजिक सरोकार, जनजाग्रति के मुद्दों को प्रस्तुत करते हुए हर वर्ग के मानव समुदाय को सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है। शहर से गाँव, गाँव से कस्बे, कस्बे से नगर, नगर से महानगर, देश विदेश और समूचा विश्व प्रभावित है। इसीलिए दूरदर्शन के सकारात्मक प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता है–''आने वाले दिनों में जिस तरह संचार क्रान्ति का विस्तार पूरे विश्व को एक ग्लोबल विलेज में तब्दील कर रहा है, उससे संचार क्रान्ति के माध्यमों का यह सम्प्रेषण आर्थिक बदलाव के अलावा आदमी के रहन–सहन तथा रुचियों को बदल रहा है। आज संचार क्रान्ति विकासवादी परिकल्पना को नई आधार शिला प्रदान कर रही है, जो नई साँस्कृतिक चेतना तथा आदमी के नये सामाजिक मूल्यों तथा इसके सरोकारों को नये अर्थ भी प्रदान कर रही है।''[4]

आज मनुष्य को सबसे अधिक आवश्यकता सूचनातंत्र की ही है। यह एक वैश्विक उद्योग बन गया है। व्यावसायिक दृष्टि टीवी से उभर रही है। उद्यमों का फलना–फूलना मीडिया पर आधारित है। आज माध्यम ही सन्देश हो रहा है। वीडियो कैसेट की रिकार्डिंग भी जबरदस्त उपलब्धि है। जनसामान्य पर भी इसका सीधा प्रभाव है। ''मास मीडिया का सबसे बड़ा अस्त्र संस्कृति का निर्माण है। इसमें अच्छे परिणाम ब बुरे परिणाम दोनों समाहित हैं। अच्छाई यह है कि गरीब व सामान्य तबकों तक सूचनाएँ, ज्ञान–विज्ञान, उपभोग और मनोरंजन के अवसर तथा बदली हुई जीवन शैली की पहुँच बनी हुई है। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं। इस कारण इन देशों में संस्कृति के भौतिक साधन बदल जाने के बावजूद संस्कृति के अभौतिक पक्ष तथा विचारों, परम्पराओं व मूल्यों में जल्दी बदलाव नहीं होता। मीडिया सर्वेक्षण साक्षी है कि अधिकांश देशों में रेडियो व टेलीविजन पर सबसे ज्यादा देखे सुने जाने वाले कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक आर्थिक विकास तथा देशज संस्कृति व पारिवारिक विषयों से सम्बन्धित होते हैं।''[5]

हिन्दी मीडिया में सूचनातंत्र में अनेक साधनों का प्रयोग आदि काल से ही किया जा रहा है। प्राचीन काल में भी पक्षी, प्रकृति और पवन सन्देश के साधन रहे हैं। सूचना क्रान्ति के क्षेत्र में दूरदर्शन ने अपनी अपरिहार्य भूमिका बना ली है। आज समाज की ब्रॉडकास्टिंग का तरीका ही बदल गया है। प्रायः व्यक्ति उस माध्यम को चुनता है जहाँ से सबसे अधिक प्रभावी और सही सूचना प्राप्त हो सके। टीवी के रहते रेडियो की ओर कोई नहीं जाता। समाचार पत्र भी पिछले दिन की सूचना देता है परन्तु टीवी के द्वारा अपडेट्स सूचनाएँ दी जाती है। विश्व के कोने–कोने में घट रही घटनाओं का विवरण और दृश्य टीवी के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाते हैं। पिछले समय में अन्ना हजारे और योगीराज रामदेव के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन की प्रतिपल की झलक को टीवी के सहारे ही देखा गया। एक बहुत बड़े हुजुम का शरीक होना और सरकार को झुका देना एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय स्तर पर विजय थी। कुछ प्रतिबद्धताओं के कारण टीवी का प्रभाव विपरीत दशा में भी पड़ रहा है–''जन माध्यमों के द्वारा विश्व में क्या हो रहा है। इसकी विस्तृत रिपोर्ट एवं खबरे प्रसारित होती रहती है, किन्तु दैनन्दिन जीवन से, व्यक्ति की जिन्दगी से, श्रोता की जिन्दगी से इन्हें जोड़कर पेश नहीं किया जा रहा है। यानी व्यापक यथार्थ से सूचनाओं को जोड़ नहीं पाते सूचनाओं एवं खबरों का यह विच्छिन्न प्रभाव व्यक्ति को निजी जीवन से दूर ले जाता है। निज को और दुनिया को समझने से वंचित कर देता है। कृत्रिम उन्मादों की ओर ले जाता है। जनसमाज में जनमाध्यम मूल्यशक्ति और सम्पत्ति वृद्धि के महत्त्वपूर्ण उपकरण रहे हैं।''[6]

सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से मनोरंजन के साधनों में सबसे अधिक टीवी और रेडियो का ही प्रयोग किया जाता है जिसमें सबसे अधिक लोकप्रिय और व्यापक साधन दूरदर्शन को ही स्वीकार किया गया है। श्रव्य और दृश्य की सुविधा होने के कारण हर आयु वर्ग स्तर, श्रेणी के लिए अपरिहार्य साधनों के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। असंख्य चैनल अनेक धारावाहिकों से जन समाज का मनोरंजन कर रहे हैं। अनेक सिनेमा की प्रस्तुति भी टीवी के माध्यम से हो जाती है और जनसमाज एक–एक सिनेमा को सुविधापूर्वक मनोरंजन के लिए देख सकता है। मनोरंजन की दृष्टि से टीवी महलों से झुग्गी, झोपड़ी तक पहुँच गया है जिसने अपने पाँव मोबाइल, इण्टरनेट तक भी पसार दिये हैं। चाहे

इसके प्रभाव नकारात्मक और अपसंस्कृति की ओर ले जा रहे हैं लेकिन इसकी उपयोगिता को भी नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। इन मनोरंजन के साधनों में सर्वाधिक केन्द्र नारी है। स्त्रीवाद का सारा ठेका टीवी को ही मिल गया है। शास्त्रीय संगीत के स्थान पर कानों को बहरा कर देने वाला संगीत अधिक प्रभावी हो रहा है फिर भी दूरदर्शन की अपरिहार्यता और महत्त्व को स्वीकार किया जा रहा है–"इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, खासकर इन्द्रधनुषी रंगों से सजे देशी विदेशी टीवी चैनल आज लाखों करोड़ों लोगों के साथ सम्प्रेषण करते हैं। ये अपने शोज धारावाहिको तथा सिनेमा के अस्त्रों के साथ विश्व के सबसे पापुलर मीडिया बन गये हैं। टीवी पर्दे पर पात्र ग्लेमर से व्यक्ति के रूप में उभरते हैं, उनका चेहरा, आवाज, हाव–भाव लाखों करोड़ों के लिए खास होते हैं व व्यक्तित्त्व निर्माण हेतु उदाहरण होते हैं। करोड़ों लोगों की दिनचर्या में उनकी भौतिक उपस्थिति दर्ज हो जाती है। टीवी में दिखायी देने वाले ये चेहरे इन लाखों करोड़ों लोगों से कभी नहीं मिलते। पर्दे में आने से इन चमकते सितारों के बीच एक जादुई प्रभाव मण्डल निर्मित हो जाता है। यह एक मायावी सम्बन्ध होता है जो व्यक्ति की रोज की दुनिया में आ बैठता है। निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन का अन्तराल कैसे समाप्त होता है पता नहीं चलता।"[7]

ज्ञानवर्द्धन और शिक्षण–प्रशिक्षण के लिए भी दूरदर्शन का भी प्रयोग किया जा रहा है। कुछ धारावाहिक भारतीय संस्कृति के पोषक भी हैं। उनसे जनसामान्य और बच्चों की जानकारी भी काफी बढ़ रही है। रामायण, महाभारत, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, शिवाजी, महादेव, हनुमान आदि से सम्बन्धित अनेक धारावाहिक भारतीय संस्कृति को परोसकर भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ा रहे है जो नहीं पढ़ पाते या जिन्हें पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता सभी वर्ग के लोग धर्म और संस्कृतिपरक इन धारावाहिकों से लाभान्वित हो रहे हैं। प्रारम्भ से धारावाहिकों के माध्यम से ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक नैतिक आर्थिक मूल्यों से भी परिचित होकर लोग ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। दूरदर्शन के सहारे यह सामग्री प्रत्येक घर, झुग्गी–झोपड़ी में पहुँच रही है जो भारतीय संस्कृति को विदेशों तक नाटकीय रूप में सचित्र पहुँचा रही है। हर क्षेत्र के ज्ञान पिपासुओं को सामग्री दूरदर्शन से प्राप्त हो रही है। साहित्य, विज्ञान, अर्थ, व्यापर, कला, संस्कृति का ज्ञान दूरदर्शन पर प्रसारित सामग्री से हो रहा। कुछ खेलों का सीधा प्रसारण और धार्मिक प्रवचनों का सीधा प्रसारण घर–घर तक पहुँचाया जा रहा है बल्कि कुछ कार्यक्रमों का आकर्षण इतना अधिक है कि लोग मंत्रमुग्ध होकर कार्यक्रमों को देखकर रहे हैं। बाबा रामदेव, रविशंकर शर्मा, मुरारी बापू, ओझा भाई जैसे श्रेष्ठ वक्ताओं के भाषण और रामायण, भागवत् और भारतीय संस्कृति के उन्नायक अनेक सद्ग्रन्थों का प्रसारण और बहुमूल्य विचारों का सीधा प्रसारण टीवी सीरियलों की सामाजिक उपादेयता को अनवरत सिद्ध कर रहे है। ज्योतिष और वास्तु सम्बन्धी जानकारियों का प्रसारण और व्यक्तिगत समस्याओं के निदान टीवी के माध्यम से किया जा रहा है। विभिन्न रोगों से सम्बन्धित ज्ञान और उपचार के क्षेत्र टीवी के माध्यम से अवगत कराये जा रहे है। बाबा रामदेव जैसे उन्नायकों द्वारा भारतीय संस्कृति की साधना और व्यापकत्व देश–विदेश में भी घर–घर में मिल रहा है और लाखों की संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

हिन्दी मीडिया के अनेक रूप दोनों रूपों में हमारे सामने प्रस्तुत है सद्–असद् रूप में। इसलिए दूरदर्शन की सामाजिक उपादेयता को हम किसी भी रूप में नकार नहीं सकते। दूसरा पक्ष रोजगार से

सम्बन्धित भी है। भूमण्डलीकरण के युग में व्यापारिक वृत्ति को बढ़ावा मिला है। इसलिए दूरदर्शन पर भी बाजारीकरण और व्यावसायीकरण का खासा प्रभाव है। इसीलिए दूरदर्शन का बाजार अच्छी तरह फलता–फूलता दिखायी दे रहा है। दूरदर्शन के क्षेत्र में भी धन से वारे–न्यारे हो रहे है और अनेक लोगों को रोजगार भी मिल रहा है और धन भी और जीवन की दिशा भी कौन बनेगा करोड़पति जैसे सामान्य ज्ञान पर आधारित कार्यक्रमों के माध्यम से पर्याप्त धनराशि मिल रही है, जिससे रोजगार शुरू करने का धन का अभाव दूर करने का प्रयोग किया जा रहा है। युवा वर्ग के लिए प्रतियोगिताओं के माध्यम से कला की पहचान तो हो रही है अपेक्षित धन और रोजगार भी प्राप्त हो रहा है। छोटे–छोटे बच्चे अनेक कला और ज्ञान सम्बन्धी प्रतियोगिता में भाग लेकर बहुत छोटी उम्र में यश भी प्राप्त कर रहे है और धन भी। दूरदर्शन में टेलीफोन द्वारा मत संगृहीत करने की योजना काफी हद तक सम्पन्न व्यापारिक बुद्धि का परिचय दे रही है, जिसके माध्यम से असंख्य धनराशि, दूरदर्शन के चैनलों के माध्यम से पहुँच रही है। ज्योतिषियों और वास्तुविज्ञों को धन, यश की प्राप्ति बहुत ही सहज ढंग से हो रही है।

दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले असंख्य कार्यक्रम और विज्ञापन से जुड़ा समुदाय काफी लाभान्वित हो रहा है। जहाँ प्रसारित कार्यक्रमों की संख्या में बेहताशा वृद्धि हुई है वहाँ रोजगार के अवसरों में काफी इजाफा हुआ है। छोटे–बड़े लोग और छोटे बड़े कार्यक्रम दूरदर्शन के माध्यम से अपरिहार्य और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं। बाजारीकरण की प्रवृत्ति से दूरदर्शन विज्ञापनों के अपार भण्डार से और मुनाफा खोरी से अकूत सम्पत्ति अर्जित कर रहा है। दूरदर्शन पर दिखायी देने वाला चेहरा पिछड़े समाज के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन रहा है। विज्ञापन में अधिकांशतः केन्द्र नारी को बनाकर उसको बाजार की वस्तु बना दिया है। ऐसा लगता है वस्तु के साथ–साथ नारी का विक्रय भी खुलेआम होने लगा है। नारी का संकोच और अदब इन्हीं व्यावसायिकों के हाथों बिक चुका है। हर वर्ग की नारी अपना अस्तित्त्व मिटाती और अस्मिता खोती हुई नज़र आ रही है। इसलिए भारतीय संस्कृति के लिए यह चिन्ता का विषय भी रहा है–''समकालीन सेक्स क्रान्ति का एक पहलू.....वर्जना की वस्तु होने की जगह आनन्द के सर्जना की वस्तु बना देना है तो दूसरा पहलू समाज सेक्स की गोपनीयता को एक झटके से अगोपनीय बना देता है दोनों एक दूसरे से जुड़े है।''[8]

प्रस्तुत आलेख का मन्तव्य यह सिद्ध करना है कि हिन्दी मीडिया की सामाजिक उपादेयता और युवाओं के लिए रोजगार की दृष्टि से बहुत प्रभावी, अपरिहार्य और जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। यद्यपि विषम प्रभाव से प्रबुद्ध जनसमाज बहुत चिन्तित और परेशान दिखायी दे रहा है लेकिन उसकी सकारात्मकता को भी नकारा नहीं जा सकता है। आज हम यह सोचे कि इसके दुष्प्रभाव से दूरदर्शन और अनेक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को जीवन से निकाल दे तो यह सम्भव नहीं। जैसे हम इलेक्ट्रॉनिक के बिना नहीं रह सकते। उसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बिना भी नहीं सकते दूरदर्शन का प्रभाव माध्यम का नहीं, वस्तु का है कि हमें कैसी वस्तु परोसी जा रही हे, जिससे हमारा देश, समाज परिवार और व्यक्ति विक्रय की वस्तु मात्र रह गया है। आज आवश्यकता है प्रस्तुति अभिव्यक्ति की, वस्तु सँवारने की। मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है कि दूरदर्शन हम और हमारे समाज को आकाश की ऊँचाइयों तक अवश्य ले जायेगा। अतः दूरदर्शन सामाजिक उपादेयता और रोजगार की दृष्टि से सबल माध्यम है।

ISSN 2277-5587

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, डॉ. अर्जुन तिवारी, आमुख
2. साहित्यिक पत्रकारिता—ज्योतिष जोशी पृ.सं.—119
3. हिन्दी पत्रकारिता कल आज और कल—सं. डॉ. प्रणव, डॉ. पुनीत बिसारिया पृ.सं.—278
4. वही पृ.सं.—279
5. वही पृ.सं.—266—267
6. जनमाध्यम और मास कल्चर,—जगदीश चतुर्वेदी पृ.सं.—16
7. हिन्दी पत्रकारिता कल आज और कल सं. प्रणव, डॉ. पुनीत बिसारिया पृ.सं.—263
8. उत्तर आधुनिक परिदृश्य (उपभोक्ता संस्कृति के रूप में)—सुधीश पचौरी पृ.सं.—57

***

Volume - II January - March 2012 ISSN 2277-5587

गोलपुर के शैल चित्रों का पुरावैभव

वीरेन्द्र शर्मा
व्याख्याता
राज. कन्या महाविद्यालय, चौंमू
डॉ. रवीन्द्र टेलर
व्याख्याता
एस.एस.जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर

मानव के द्वारा प्रागैतिहासिक काल से चेतना में निहित सृजनशीलता, सौंदर्यबोध, जीवन संघर्ष व बाहरी परिस्थितियों की अभिव्यक्ति शिला चित्रों के माध्यम से की गई। इन शिला चित्रो के माध्यम से मनुष्य–मनुष्य के बीच का सम्बन्ध, सामाजिक परिवेश के साथ मानव की अन्तश्चेतना के प्रवाह का परिचय प्राप्त होता है। भारत में शिला चित्रों की खोज का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारम्भ हुआ, जिसका श्रेय आर्चिबाल्ड कार्लाइल व जॉन कॉकबर्न को जाता है।

प्रागैतिहासिक मानव के द्वारा विशाल गुफाओं में लाल, सफेद, पीले, गुलाबी, काले, हरे आदि रंगों से विविध चित्र चित्रित किये गये। शिला चित्रों की प्राप्ति की दृष्टि से वर्तमान में राजस्थान महत्वपूर्ण होता जा रहा है, जहां निरन्तर नवीन शिला चित्रों की खोज जारी है। इस दृष्टि से राजस्थान का बूंदी जिला अति समृद्ध है। इसी क्रम में बूंदी जिले में स्थित गोलपुर अपने शिलाचित्रों की कलात्मक विशिष्टता के लिए विख्यात है।

गोलपुर के शैल चित्र

गोलपुर बूँदी जिला मुख्यालय से 35 कि.मी. दूर पश्चिम दिशा में, बूंदी–चित्तौड़गढ़ मार्ग पर विध्याचल पर्वत मालाओं के पठारी भाग में स्थित है यहां, दर्जनों चट्टानी नदियां है, जिनका बहाव पश्चिम से उत्तर की ओर है। इस नदी के किनारे के शैलाश्रय, बहुत ऊँचे एवं दर्जनों की संख्या में हैं, जिनमें 9 शैलाश्रयों में शैल–चित्र है। गोलपुर शैल–चित्र साइट की खोज पुरा अन्वेषक ओम प्रकाश शर्मा 'कुक्की' के द्वारा 02.12.1999 को की गई थी, यह अत्यन्त रमणीक साईट है। यहां का पूरा क्षेत्र हरे भरे वृक्षों से आच्छादित है, जिनमें जामुन, महुवा, धौंक इत्यादि के वृक्ष हैं। इस शैल चित्र साईट में गेंरू, लाल काले, रंगों का प्रयोग किया गया है। यहां मेसोलिथिक चाल्कोलिथिक एवं हिस्टोरिक पीरीयड के चित्रों की बहुलता है, जिनमें स्वतंत्र रीति से पशु चित्रण किया गया है।

शैल्टर नं. 1– यह एक विशाल शैलाश्रय है, जिसकी ऊँचाई लगभग 15 फीट, चौड़ाई 20 फीट एवं अन्दर की तरफ गहराई 7.8 फीट है। यह पूर्वामुख शैलाश्रय है, जिसमें दर्जनों की संख्या में शैल चित्र हैं, जिनमें नीलगाय, लोमड़ी, शेर, रींछ, घुड़सवार, सेई, बन्दर, बैल, हिरण, मानवाकृतियां, कछुआ, फूलदान एवं नाना प्रकार के चित्र है। इनमें से कुछ चित्र 3 से 5 फीट तक के आकर के हैं। बड़े चित्रों में नीलगाय के चित्र हैं जो मेसोलिथिक पीरीयड के हैं। इनके अतिरिक्त बैलों के एक दर्जन चित्र हैं। दो

बैलों को खूंटे से बंधा दिखाया गया है। एक गाय का चित्र भी है, जिसकी पूंछ पर रस्सा बंधा हुआ है तथा रस्सा मानव के हाथ में है। यह चित्र कृषि युग की ओर इशारा करता है, बैलों के सीगों एवं पूंछ पर सुन्दर अलंकरण किया गया है। यह चित्र चाल्कोलिथिक पीरीयड के है। एक ही शैल्टर में अलग–अलग पीरीयड के सैकड़ों चित्र हैं, जो यह सिद्ध करते है कि प्रागैतिहासिक मानव ने अलग–अलग समय में एक ही शैलाश्रय का इस्तेमाल किया है। यहां चित्रों के ऊपर भी चित्र बने हुये हैं; अर्थात अध्यारोहण (ओवर लेपिंग) है। इतिहास कालीन चित्रों में घुड़सवार मानव, जिसके हाथ में भाला है, दूसरे चित्र में चार महिलाऐं दर्शाई गई है, जो ट्राई ऐंगुलर आकृति की हैं, इनके धड़ पर सिर नहीं है सिर्फ छोटी–छोटी गोलाकार बिंदियों का गोल घेरा है। गोले घेरे के ऊपर, शिरो भाग में कमल की कलियों से श्रृंगार किया गया है। पूरे पैर भी नहीं बनाए गए है, सिर्फ पंजे एवं एड़ियां ही दिखाई दे रही हैं। इन चार महिलाओं के आगे एक पुरूषाकृति है, जो इन चार महिलाओं से भिन्न आकृति है। इसमें सिर हाथ पैर सहित पूरा शरीर प्रदर्शित किया गया है। चारों महिलाओं के हाथों में कमल पुष्प की कलियां है। संभवतः यह चित्र बौद्ध कालीन है क्योंकि नलदह एवं धारवा के शैल–चित्रों में बौद्ध कालीन लेख एवं शैल चित्र है।

अतः यह साईट भी धारवा के समीप है जिनके मध्य की दूरी मात्र 4 कि.मी. है। ओम प्रकाश शर्मा 'कुक्की' को बूंदी क्षेत्र से मौर्य कालीन ताम्र मुद्रायें भी मिली है। अतः धारवा की Rockart में बौद्ध कालीन लेख एवं चित्र भी मिले है, इससे यह सिद्ध होता है कि, बूंदी क्षेत्र में बौद्ध कालीन सभ्यता–संस्कृति का भी प्रचार–प्रसार था। अतः उक्त संस्कृति के लोग इस क्षेत्र में निवास करते थे। धारवा एवं नलदह के शंख लिपि के लेख भी इस तथ्य के ठोस प्रमाण है। इसी शैलाश्रय में तीरकमानधारी मानव का मेसोलिथिक पीरीयड का चित्र भी है। इसके अतिरिक्त हिरणों के भी लघु आकार के मेसोलिथिक पीरीयड के चित्र है। यह शैलाश्रय तीन काल खण्डों का प्रतिनिधित्व करता है। इसी शैलाश्रय में खोज कर्ता को माइक्रो लिथिक पीरीयड के टूल्स भी मिले हैं, जिनमें कोर मुख्य हैं। इस शैलाश्रय के चित्र लाल, कत्थई एवं गेरू रंग के है।

शैल्टर 2– यह शैलाश्रय भी पूर्वाभिमुखी है, इस विशाल शैलाश्रय की चौड़ाई लगभग 25 फीट, अन्दर से ऊँचाई 5 से 8 फीट एवं अन्दर की गहराई 12–13 फीट है। इस शैलाश्रय में ज्यादातर काले रंगों का प्रयोग किया गया है, जिसमें कछुआ, विविध अलंकरण अष्ट कमल दल (फूल) इत्यादि के चित्र हैं। बहुत से चित्र धुंऐ, हवा–पानी से अस्पष्ट हो गये है। कुछ चित्र चटख लाल रंगों के भी है। इस शैलाश्रय के अधिकांश चित्र चाल्कोलिथिक एवं हिस्टोरिक पीरीयड के हैं। यह एक विशाल शैल्टर है जिसमें 50–60 व्यक्ति आराम से रह सकते हैं।

शैल्टर नं. 3– यह बहुत विशाल शैल्टर है, जिसकी चौड़ाई लगभग 65–70 फीट ऊँचाई 15 से 20 फीट एवं अन्दर की तरफ गहराई 10–12 फीट है। यह भी पूर्वाभिमुखी शैल्टर है। इस शैल्टर में ट्राई ऐंगुलर मानवाकृतियां, कछुआ एवं नाना प्रकार के चित्र हैं। इस शैल्टर के अधिकांश चित्र हवा, पानी, धूप इत्यादि से लुप्त प्राय हो गये है। कुछ आधे अधूरे चित्र दिखाई दे रहे हैं। घुंधले एवं अधमिटे चित्रों में ज्यादातर मेसोलिथिक पीरीयड के चित्र हैं, ट्राई एंगुलर मानवाकृतियां के चित्र बहुत अच्छी हालत में है।

शैल्टर नं. 4– यह एक छोटा सा शैल्टर है, जो पूर्वाभिमुखी है, जिसकी ऊँचाई 9–10 फीट, चौड़ाई 10–11 फीट, अन्दर की गहराई 3–4 फीट है। इस शैल्टर में दो नील गायों के गेरू लाल रंग के चित्र हैं, जो कि मेसोलिथिक पीरीयड के हैं। यह चित्र आउट लाईन से बनाये गये हैं, हालांकि कुछ हिस्से के चित्र मिट गये है, किन्तु इनका अंकन (बनावट) बहुत अच्छे तरीके से किया गया है।

शैल्टर नं. 5 व 6– यहां दो विशाल शिला खण्ड हैं, जिनमें एक शिला खण्ड के चित्र धूमिल हो गये है। दूसरे शिलाखण्ड में, वन्य जीव एवं ज्यामितीय डिजाईन एवं मानवाकृतियां हैं यहा शैलाश्रय दक्षिणाभिमुख है, जिसमें, चाल्कोलिथिक एवं हिस्टोरिक आकृतियां है। इस शैलाश्रय के अधिकांश चित्र धूमिल एवं अस्पष्ट हो गये हैं, कुछ ही चित्र अच्छी अवस्था में हैं।

शैल्टर नं. 7– नदी के दाहिने तट पर स्थित है यह शैल्टर 8 फीट चौड़ा, 4–5 फीट ऊँचा 7 फीट अन्दर की तरफ गहरा है जिसमें एक दर्जन से अधिक चित्र हैं। इन चित्रों में हिरण, बैल, अलंकरण एंव वन्य जीवों के लघु आकार के चित्र है जो चटख लाल रंगों से निर्मित है, यह चित्र चाल्कोलिथिक पीरीयड के हैं। यह शैल्टर्स पूर्वाभिमुख है।

शैल्टर नं. 8– यह शैल्टर नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है, एवं काफी बड़ा शैल्टर है। इस शैल्टर में चटख लाल रंगों के चित्र हैं, जिनमें अलंकरण पशु–पक्षियों के हिस्टोरिक चित्र हैं। यह शैल्टर पश्चिममुखी है।

शैल्टर नं. 9– यह शैल्टर नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है तथा 10 फीट चौड़ा, 5 फीट ऊँचा एवं 5–6 फीट अन्दर की तरफ गहरा है, जिसमें सफेद रंग के धुंधले चित्र है। वर्षा, हवा–पानी के कारण चित्र काफी धूमिल हो गये है।

गोलपुर शैल चित्र साईट में सैकड़ों की संख्या में शैल्टर्स है, जिनमें बहुत से शैल्टर्स के शैल–चित्र वर्षा, हवा, पानी के प्रभाव से समाप्त हो गये हैं। सैकड़ों की संख्या में शैल्टर्स की उपस्थिति देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि, प्रागैतिहासिक कालीन मनाव इस क्षेत्र में अवश्य निवास करता होगा।

उक्त शैल चित्र तत्कालीन मानव की सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों का प्रभावी चित्रण करने साथ तत्कालीन वन्य जीवों की उपस्थिति व उनके मानव के साथ सम्पर्क को विशिष्ट तरीके से व्याख्यायित करने के लिए उपर्युक्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बेडकर – इंडियन रॉक शैल्टर पेटिंग्स : देयर सिग्निफिकैंस, रॉक आर्ट इन इण्डिया, 1984
2. घोष ए.के. – सिग्निफिकैंस ऑफ रॉक आर्ट इन दि लाईट ऑफ एथेनोग्राफिक पेरेरल्स, रॉक आर्ट इन इण्डिया, 1984
3. गुप्त, जगदीश – प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1987
4. उपाध्याय, बी.एस. – आदिम मानव की खोजें, भारती, अप्रैल 1961
5. वाकणकर, वी.एस. – पेंन्टेड रॉक शैल्टर्स ऑफ इण्डिया, पुणे, युनिवर्सिटी ऑफ पुणे, 1972

***

अस्मितामूलक पत्रकारिता का संकट एवं चुनौतियाँ

डॉ. सुभाष चन्द्र दीक्षित
एसो. प्रोफेसर
विभागाध्यक्ष–संस्कृत विभाग,
जवाहर लाल नेहरू कालेज, एटा (उत्तर प्रदेश)

पत्रकारिता एवं मीडिया लोकतन्त्र के सुदृढ़ स्तम्भ ही नहीं, उसके श्रृंगार भी हैं। जन–मन की आकांक्षाओं को समर्थ वाणी देने का काम पत्रकारिता दीर्घ काल से करती चली आ रही है। लेकिन इस देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मूल्यों का क्षरण इतनी द्रुतगति से हुआ कि आज जनमानस अपने को ठगा सा अनुभव कर रहा है। राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक मूल्यों की चरमाराहट को सशक्त अभिव्यक्ति पत्रकारों ने प्रदान की है। फलतः उनके सामने अनेक संकट स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। कारण, सहिष्णुता का भाव तथाकथित लोगों के मन से विलुप्त हो चुका है। आत्मालोचन के स्थान पर अवमानना से तिलमिलाकर ऐसे लोग जनबल, धनबल, बाहुबल एवं सत्ताबल के मद से चूर होकर मीडिया के बन्धुओं को सबक सिखाने की ठान लेते हैं। अतः पत्रकारों के लिए ही नहीं, समूची पत्रकारिता के लिए भीषण संकट खड़ा हो जाता है। इस संकट से जूझते हुए उसकी एकाग्रता भंग होती है।

पत्रकारिता पर आया हुआ कोई भी संकट राष्ट्र के लिए अशुभ संकेत होता है। जब–जब ऐसा हुआ है, अभिव्यक्ति की देवी को कभी आत्महत्या करनी पड़ी है, तो कभी वनबास का दंश झेलना पड़ा है। यह बात अन्यथा है कि मीडिया की अस्मिता की आघात पहुँचाने वाले कारक और कारण भी काल के कराल गाल से बच नहीं सके। उनका अस्तित्व क्षण भर में ध्वस्त प्राय हो गया। यद्यपि अनेक पत्रकार पत्रकारिता की अस्मिता की रक्षा के मार्ग में आई हुयी चुनौतियों को स्वीकार कर वीरगति को भी प्राप्त हो चुके हैं। लेकिन उनके उत्सर्ग को न तो भुलाया जा सकता है और न अस्मितामूलक पत्रकारिता को समाप्त किया जा सकता है। अतएव संकट एवं चुनौतियों का पूरे साहस के साथ सामना करना होगा, तभी अस्मितामूलक पत्रकारिता का धवल हिमालय अविचल भाव से विराजमान रहेगा।

वस्तुतः सत्य का उद्‌घाटन करना पत्रकार के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती होता है। यह एक अग्निपथ है, जिस पर चलने वाले अनेक साहसी पथिकों को अस्मिता की रक्षा हेतु जीवन होम करना पड़ता है। हिन्द समाचार समूह के स्वामी एवं 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र के सम्पादक लाला जगतनारायण एवं उनके परिवार का उत्सर्ग उसका सबसे बड़ा उदाहरण है। पंजाब में आतंकवाद और आतंकवादियों के नृशंस, जघन्य, अमानवीय एवं हृदय विदारक कुकृत्यों का दृढ़ता से प्रकाशन करते हुये 'पंजाब केसरी' ने अपूरणीय क्षति उठाई, किन्तु अपने पत्र की अस्मिता, गरिमा और पत्रकारिता के सम्मान को आँच नहीं आने दी। पत्र आतंकवादियों के लिए 'खाड़कू' शब्द का प्रयोग करते हुये उनकी तीव्र निन्दा कर रहा था। आतंकवादी चुनौतियाँ दे रहे थे, हत्या और सर्वनाश की धमकियाँ दे रहे थे। उनका कहना था कि पत्र में उनके लिए 'मिलिटैण्ट' शब्द का प्रयोग किया जाये, लेकिन पत्र ने उनके लिए 'खाड़कू'

शब्द का प्रयोग और उनके कुकृत्यों की भर्त्सना जारी रखी। परिणामतः 9 सितम्बर, 1981 को आतंकवादियों ने निर्ममता से लाला जगतनारायण की हत्या कर दी। अपने समूह की अस्मिता और आदर्श की रक्षा का दायित्व उनके पुत्र रमेश चन्द्र ने ग्रहण किया। कुछ समय बाद उनकी भी हत्या कर दी गई। पत्र फिर भी नहीं झुका और क्रमशः 67 अधिकारियों, कर्मचारियों, पत्रकारों और परिजनों की हत्या हुयी। किन्तु, प्रभु कृपा से पत्र अब भी खड़ा है–अपनी सम्पूर्ण अस्मिता और चेतना के साथ। इस प्रकार के बलिदान के और भी अनेक उदाहरण हैं। एटा में 'अमर उजाला' के पत्रकार जगरूप शर्मा के अग्रज स्वर्गीय श्री रामनाथ शर्मा की 14 फरवरी, 1986 को हत्या, दैनिक जागरण के ऊर्जावान् पत्रकार स्वर्गीय श्री गजेन्द्र सिंह राठौर की 1992 में हत्या पत्रकारिता की अस्मिता की रक्षा हेतु बलिदानों के कतिपय उदाहरण मात्र हैं।

अस्मिता मूलक पत्रकारिता के संकट और चुनौतियाँ भारत में ही नही, सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। पाकिस्तान में प्रख्यात पत्रकार डेनियल पर्ल की हत्या एक ज्वलन्त उदाहरण है। ईराक–अमेरिका संघर्ष में 62 पत्रकारों ने प्राण गंवाये, अल्जीरिया के संघर्ष में 58 पत्रकारों की मृत्यु हुई। पत्रकारों की अस्मिता के मर्दन में अमेरिका सबसे ऊपर है जहाँ सर्वाधिक पत्रकार कैद हैं। द्वितीय स्थान पर चीन और म्यामार छठे स्थान पर पत्रकारिता की अस्मिता को ध्वस्त करने के लिए कुख्यात हैं। क्यूबा में 24, इण्डोनेशिया में 15, इथियोपिया में 13 पत्रकारों की हत्या के संदर्भ आज भी दुःख की अनुभूति कराते हैं। मानवाधिकारों के उल्लघंन की भर्त्सना करने के लिए 125 से अधिक संपादक और पत्रकार अमेरिका की जेलों में बन्द हैं।

अस्तुः ऐसे वैश्विक परिदृश्य के मध्य भारत में 90 प्रतिशत लोगों की आस्था पत्रकारिता के प्रति भारतीय पत्रिकारिता की अस्मिता का अभिनंदन है। सचमुच, कभी पत्रकारिता को क्रान्ति के रूप में देखा गया था, लेकिन यह दुखद है कि अब वही क्रान्ति धीरे–धीरे बिजनेस का रूप धारण कर चुकी है और आगे चलकर शायद ऐसी सब्जी मण्डी जहाँ औने–पौने दाम में कुछ भी बेचा जा सकता है–यह कहना है लोकेश गुर्जर का। पत्रकारिता को एक क्रान्ति का रूप राजा राममोहन राय जैसे समाज सेवकों ने दिया। शनैः–शनैः इस क्रान्ति ने व्यापक जनसमुदाय को अपने साथ जोड़ा और परिणामतः देश ने स्वतन्त्रता का वरण किया।

राजनीतिक चुनौतियों और जिम्मेदारियों के अतिरिक्त सामाजिक चुनौतियाँ और जिम्मेदारियाँ भी पत्रकारिता का परमधर्म हैं। इस धर्म का परिपालन पत्रकार की स्वतःस्फूर्त अन्तःचेतना से नियन्त्रित होता है। यह चेतना अनुभूति और अध्ययन की आँच में तपकर जब निखरती है, तब पत्रकार की लेखनी से 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की सृष्टि होती है। ऐसे स्वनामधन्य पत्रकारों का एक लेख ही सरकारों की चूलें हिलाने को पर्याप्त होता है। इसलिए पत्रकार की सामाजिक चुनौतियों एवं जिम्मेदारियों का फलक बहुत व्यापक है। इस व्यापक फलक की मान–मर्यादा पर आँच न आये, इसके लिए पूरे मीडिया जगत् को प्रतिपल जाग्रत रहना चाहिए। लोकेश गुर्जर इसीलिए कहने को विवश होते हैं कि– अब का पत्रकारिता का दौर ऐसा दौर है जहाँ सिर्फ चाटुकारिता की पत्रकारिता होने लगी है। इसके विपरीत

महादेव देसाई लिखते हैं –"सुवाच्य लेखन की कोटि में आने की जरूरी शर्त है कि वह लेखन बोधप्रद हो, आनन्दप्रद हो तथा सामान्य तौर पर लोकहितकारी हो; उसके अंग तथा उपांग लोकहित की परम दृष्टि से तैयार किये गये हों।"[1] यह बात अस्मिता मूलक पत्रकारिता पर शत–प्रतिशत लागू होती है। आगे महादेव देसाई लिखते हैं –"आधुनिक समाचार पत्र औद्योगिक कारखानों की भाँति पश्चिम की पैदाइश हैं। हमारे देश के कारखाने जैसे पश्चिम के कारखानों के प्रारम्भिक काल का अनुकरण कर रहे हैं, उसी प्रकार हमारे देशी भाषाओं के अखबार देशी अंग्रेजी अखबारों के ब्लॉटिंग पेपर (सोख्ता) जैसे हैं तथा हमारे अंगेजी अखबार ज्यादातर पाश्चात्य पत्रों का अनुकरण हैं। अनुकरण अच्छे और सबल हों तब कोई अड़चन नहीं होती, क्योंकि जिस कला को सीखा ही है दूसरों से, उसमें अनुकरण तो अनिवार्य होगा। हमारे अखबारों में मौलिकता हो अथवा अनुकरण, यदि वे जनहित साधक हो जायें तो भी काफी है, ऐसा मुझे लगता है।"[2]

महादेव देसाई जैसे पत्रकारिता–विशेषज्ञों ने पत्रकारिता को एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित किया है। उनकी धारणा है कि जैसे यंत्रों का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हैं, वैसे अखबारों के भी सदुपयोग और दुरुपयोग हैं। कारण, अखबार यंत्र की भाँति एक महाशक्ति हैं। लॉर्ड रोज़वरी ने अखबारों की उपमा नियाग्रा के प्रपात से की है। इस संदर्भ में महात्मा गाँधी जी ने स्वतन्त्र रूप से कहा थाः "अखबार में भारी ताकत है। परन्तु जैसे निरंकुश जल–प्रपात गाँव के गाँव डुबो देता है, फसलें नष्ट कर देता है, वैसे ही निरंकुश कलम का प्रपात भी नाश करता है। यह अंकुश यदि बाहर से थोपा गया हो तब वह निरंकुशता से भी जहरीला हो जाता है। भीतरी अंकुश ही लाभदायी हो सकता है। यदि यह विचार–क्रम सच होता तब दुनिया के कितने अखबार इस कसौटी पर खरे उतरते? और जो बेकार हैं, उन्हें बन्द कौन करेगा? कौन किसे बेकार मानेगा? काम के और बेकाम दोनों तरह के अखबार साथ–साथ चलते रहेंगे। मनुष्य उनमें से खुद की पसंदगी कर ले।"[3]

इस प्रकार समाचारपत्र दुधारी तलवार जैसे हो सकते हैं, क्योंकि उनके दो पक्ष हैं। अखबार धन्धा बन सकते हैं, ऐसा हुआ भी है, यह हम जानते हैं। दूसरी तरफ अखबार नगर पालिका की तरह, जल–कल विभाग की तरह, डाक विभाग की तरह लोकसेवा का अमूल्य साधन बन सकते हैं। जब अखबार कमाई का साधनमात्र बनता है तब बन्टाधार हो जाता है, जब अपना खर्च किसी तरह निकालने के पश्चात पत्रकार अखबार को सेवा का साधन बना लेता है, तब वह लोकजीवन का आवश्यक अंग बन जाता है।[4]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महादेव देसाई : पत्रकारिता : दुधारी तलवार, अक्टूबर 9, 2007।
2. वही, अक्टूबर 9, 2007।
3. वही, अक्टूबर 9, 2007।
4. वही, अक्टूबर 9, 2007।

***

वर्तमान आर्थिक समस्याएं और गॉधी

डॉ. भरतलाल मीणा
व्याख्याता–राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय कोटपूतली जयपुर

विश्व में आज पूंजीवादी और समाजवादी दोनों ही व्यवस्थाएं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रही हैं। गरीब व्यक्ति पूंजीवादी महाजनी बाजार व्यवस्था में और भी गरीब होता जा रहा है। विकसित देश आर्थिक रूप से कमजोर देशों का शोषण कर रहे हैं। अमरीका की विश्वव्यापी आर्थिक दादागिरी किसी से छिपी हुई नहीं है। वैश्वीकरण के युग में कमजोर राष्ट्रों का और भी अधिक शोषण होने की संभावनाऐं बढ़ गईं। भारत में 26 फीसदी से अधिक जनता आज भी गरीब रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है। यहां गरीबी हटाओ जैसे नारे भी गरीबी हटाने में असफल रहे हैं।

ऐसे में गॉधी जी का आर्थिक चिंतन हमारे लिए महत्वपूर्ण बन गया है। गॉधीजी का विचार था कि स्थााई शांति के लिए समाज में व्याप्त आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक विषमता को समाप्त किया जाना चाहिए और गरीबों के बीच की खाई को पाटा जाना चाहिए, जिससे समाज में आपसी सहयोग की जड़ें मजबूत होंगी और परस्पर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी, जैसा कि पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं में होता है। यद्यपि गॉधी जी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत आधुनिक अर्थशास्त्रियों के गले नहीं उतरता किंतु यदि इस सिद्धांत को अमल में लाया जाए तो न केवल भारत अपितु पूरे विश्व में आर्थिक समानता स्थापित की जा सकती है। संसार में जितने संसाधन है उनसे सभी को रोटी–कपड़ा और मकान सुलभ हो सकता है। गॉधी जी ने जीवन में सादगी और न्यूनतम आवश्यकता के सिद्धांत को अपनाने की बात पर जोर दिया गया था। आज हम आर्थिक मोर्चे पर असफल हो रहे हैं। समस्याऐं हमारे सामने सुरसा की भॉति मुँह फाड़े खड़ी हैं निःसंदेह भारतीय आर्थिक समस्याओं का समाधान गॉधी दर्शन में हैः–

गॉधीजी आर्थिक विचारों की किसी भी निश्चित योजना में विश्वास नहीं करते थे वह अर्थव्यवस्था को जीवन का एक अंग समझते थे, इसलिए उनके आर्थिक विचार उनके सामान्य जीवन दर्शन का ही एक भाग हैं। आधुनिक उद्योगवाद मानवीय मान्यताओं को त्यागकर मनुष्य में आवश्यकताओं को बढ़ाने तथा भौतिक धन प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करता है इसलिए गॉधीजी ने कहा कि अनन्त सुख प्राप्त करने का एकमात्र साधन सादा जीवन है।

गॉधीजी अपरिग्रह तथा विभिन्न प्रकार की असमानताओं के विध्वंस के पक्षपाती थे उनके अनुसार यदि किसी व्यक्ति को उत्तराधिकार में बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हुई है या किसी ने व्यापार एवं उद्योग के लाभ से बड़ी मात्रा में धन एकत्र किया है तो सम्पूर्ण सम्पत्ति उसकी नहीं वरन् सारे समाज की है। पूंजीपतियों को वह सम्पत्ति का खातेदार (Trustee) कहते हैं।

Economics of Khadi पृष्ठ संख्या 7 पर गॉधीजी लिखते है, - ''मैं समय और परिश्रम की बचत करना चाहता हूॅ किन्तु मानव जाति के बहुत थोड़े भाग के लिए नहीं, सभी के लिए। आज मशीन केवल थोड़े से ही व्यक्तियों को करोड़ों की पीठ पर चढ़ने में सहायता करती है।''

गॉधीजी के उपयुक्त विचार के पीछे मूल कारण यह है कि वह जानते थे कि भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले तथा गरीब देश के लिए मशीनों का प्रयोग लाभप्रद नहीं होगा उनका विचार था कि अधिक जनसंख्या को काम पर लगाने की दृष्टि से उत्पादन की ऐसी प्रणालियां काम में लानी होंगी जिनमें अधिकाधिक श्रमिकों की खपत है। ग्रामीण सर्वोदय गॉधीजी का महान आदर्श था कि व्यक्ति, समाज और देश सभी का सर्वोन्मुखी विकास हो।

गाँधी जी की सर्वोदय योजना के प्रमुख बिन्दु ये हैं :–

1. आत्म निर्भरता का लक्ष्य रखते हुए विभिन्न उद्योग धन्धों का क्षेत्रीय विकास।
2. विशाल उत्पादन के दोषों के निवारण हेतु यंत्रीकरण का न्यूनतम उपयोग।
3. सम्पत्ति के वितरण में कम से कम विषमता।
4. राजकीय महत्व के बड़े उद्योगों पर सार्वजनिक नियन्त्रण।

गाँधीजी के अनुसार वास्तविक भारत शहरों में न होकर ग्रामों में है। वह इस वाक्यांश से पूर्णतः सहमत थे कि भारतीय ग्राम गोबर के ढेर पर बने अस्वच्छ मकानों के समूह के समान हैं। गाँधी अपनी सर्वोदयी योजना के माध्यम से चाहते थे कि प्रत्येक ग्राम स्वावलम्बी गणतंत्र में परिणत हो जाए वह भारत में स्वशासन वाली पुरानी परम्परा को पुनः स्थापित करना चाहते थे क्योंकि उनका विचार था कि उसमें उपयोग एवं वितरण के साथ – साथ उत्पादन होता है और उसमें मौद्रिक अर्थव्यवस्था का कुचक्र भी नहीं था, उत्पादन विदेशी बाजारों के लिए न होकर तुरन्त उपभोग के लिए किया जाता था। समाज का सम्पूर्ण ढांचा अहिंसा पर आधारित था उनके अनुसार यह भारत की अर्थव्यवस्था पुनर्निर्माण की सबसे उत्तम विधि होगी।

गाँधीजी आधुनिक सभ्यता को चार दिन की चांदनी मानते थे और उनका विचार था कि यह अपने को स्वयं खत्म कर लेगी, गाँधीजी की दृष्टि में समूची मानवता एक कुटुम्ब के समान थी जिसमें आदमी आदमी में कोई भेद नहीं था। वास्तव में गाँधीजी का दर्शन मानव समाज की बुनियादी समस्याओं से निजात पाने की दवा है, आज की अनेक समस्याओं सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक समस्याओं का निदान बापू के दर्शन एवं उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर ही दिया जा सकता है क्योंकि अधिकाधिक चीजें आवरण में छिपाने की व्यक्ति की आकांक्षा से ही आधुनिक सभ्यता में आज निराशा, दमन और शोषण का भाव है।

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का मूल उद्देश्य था 'पूर्ण स्वराज्य' जिसे सरल शब्दों में एक मानवीय समाज की रचना कह सकते हैं गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम सेवा, सुधार परिवर्तन के

प्रत्येक पक्ष को अपने में समाहित किए हुए है, उनकी मान्यता थी कि हिंसा और द्वेष के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तन और सम्पति विवरण आत्मघाती होगा, क्योंकि शक्ति और हिंसा के बल पर प्राप्त की गई वस्तु स्थायी नहीं हो सकती, उदाहरणार्थ रूस और चीन में जो आर्थिक समानता के परिवर्तन हिंसा के माध्यम से हुए उससे मानवीय मनोवृति तो बदली नहीं जा सकी, लालच और ईर्ष्या बनी रही परिणामतः रूसी गणराज्य बिखर गया और चीन आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे नतमस्तक हो गया। वास्तव में गांधीजी के अनुसार आर्थिक समानता के लिए व्यक्ति को सामाजिक आवश्यकता के अनुसार चलाना होगा न कि वैयक्तिक इच्छा और लालच के अनुसार। गांधीजी का विरोध पूंजीवाद एवं राक्षसी मशीनीकरण से था। जो श्रम को निरर्थक बना देती है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि गांधीजी विज्ञान, तकनीकी एवं प्रगति के विरोधी थे। आज हमारे समक्ष यह समस्या नहीं है कि भारत के ग्रामीणों के लिए फुरसत का समय कैसे निकाला जाए बल्कि असली समस्या यह है, कि कैसे उनके खाली पड़े समय का सदुपयोग किया जाए इसलिए गांधीजी कहा करते थे कि मैं ऐसी मशीनों का स्वागत करूंगा जो झोपड़ियों में रहने वाले मनुष्यों के बोझ को हल्का करती है, यह नियति का व्यंग्य है कि समाज विज्ञान एवं अर्थशास्त्र के ऐसे चिन्तक को आज कुछ भौतिकवादी विचारक विज्ञान का विरोधी कहते हैं। गांधीजी पूँजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का विरोध इसलिए करते थे क्यौंकि इससे देश की राष्ट्रीय आय के या तो थोडे से ही व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाने का भय रहता है या फिर राज्यकर्ताओं के हाथ में आज यह स्थिति अपनी पराकाष्ठा पर है। भारत की आधी जनसंख्या आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में एक तरफ समाजवाद एवं गरीबी हटाओ के नारे गूंज रहे हैं तो दूसरी तरफ अधिकतम उपभोगवाद तथा संवेदन शून्यता की प्रवृतियां चल रहीं हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक समानता और गरीबी हटाओ का स्वप्न तब तक पूरा नहीं हो पाएगा जब तक हम गांवों को अपनी अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु नहीं बनाते। गांधीजी कहा करते थे कि जहां आवश्यकता से अधिक संग्रह है वहां अभाव पैदा होता है, जहां अभाव है वहां असंतोष एवं विक्षोभ होगा ही, वर्तमान में गांधी के ये शब्द खरे उतर रहे हैं। क्योंकि कोई खा–खा कर मर रहा है तो कोई बिना खाए मर रहा है। वास्तव में गांधीजी अंधे औद्योगीकरण एवं पागल यंत्रीकरण की होड से मानव समाज को बचाना चाहते थे क्योंकि इससे समाज में विवेकहीन प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और दस्तकारी तथा स्वदेशी हुनर में कमी आने लगती है। पूंजीवाद एवं राजवादी अर्थव्यवस्थाएं भुखमरी, बेरोजगारी एवं अभाव को जन्म देती है जिससे समाज में अशान्ति और अराजकता बढ़ती है।

भारतीय जनसंख्या और साधनों को देखते हुए गांधीजी ने विशाल उद्योगों को ही सब कुछ नहीं माना अपितु कृषि प्रधान और भारत को गांवो वाला देश जानकर लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी भरपूर विकसित करने पर बल दिया। आज इसकी प्रासंगिकता है क्योंकि जहां बड़े उद्योगों की एक इकाई में एक लाख रूपए के विनियोग से मात्र चार लोगों को रोजगार मिलता है वहां इतनी ही पूंजी लघु एवं कुटीर में लगाने पर इससे दस गुना लोगों को रोजगार दिया जा सकता है इसके अतिरिक्त लघु उद्योगों की स्थापना से महिला श्रम का भी सदुपयोग किया जा सकता है जिसकी आज परम आवश्यकता है।

आज भारत की ज्वलंत समस्या ग्रामीण बेरोजगारों का शहरों की ओर पलायन है। इस चुनौती का सामना तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक हम अपनी अर्थव्यवथा का मुंह गावों की और नहीं करते। बढती जनसंख्या और बेरोजगारी के लिए छोटे–छोटे उद्योग ही कारगार सिद्व हो सकते हैं, जिससे आय और सम्पति का समान वितरण सुनिश्चित करके गांवो में खुशहाली लायी जा सकती है। भारत के गांवों को आत्मनिर्भर बनाने तथा बेकारी और निर्धनता के दानवों से उनकी रक्षा के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था का गांधीजी का सुझाव व्यवहारिक भी है, और प्रासंगिक भी है। उनका सिद्वान्त रोटी का श्रम था जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वंय परिश्रम करके ईमानदारीपूर्वक अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिए।

महात्मा गांधी निर्विवाद रूप से इस सदी के महानतम् शिखर पुरूष हैं केवल भारत के ही नहीं बल्कि विश्व के। गांधीजी मानवीय समस्याओं के बारे में एक ऐसा समग्र दृष्टिकोण अपनाते थे। जिसमें व्यक्तिगत, स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर समेत मानव अस्तित्व के लगभग सभी प्रमुख विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में आश्चर्यजनक विकास की वजह से सामाजिक ढांचे में जिस तेजी के साथ बदलाव आ रहा है उससे समूची मानवता के लिए एक संकट आ पड़ा है। गांधीजी के विचारों और उनकी प्रासंगिकता को इस नए उभरते परिदृश्य में देखना होगा अन्यथा आने वाली सहस्त्राब्दि विस्फोटक होगी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान बाजारीय अर्थव्यवस्था में जिस तरह मानव से उसके मानव होने का हक छिन लिया है, और अर्थ ही सब कुछ हो गया है, वहां गांधीजी के आर्थिक विचार महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि इस सुंदर दुनिया को बचाने का एकमात्र उपाय है।

आज बाजारीय अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप उदारीकरण, भूमण्डलीकरण निजीकरण आदि अनेक धाराऐं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढ़ते प्रसार ने भारत सहित विश्व के सभी देशों में अनेक विकराल समस्याएं पैदा की है जिनका हल सिर्फ गांधी दर्शन से ही हो सकता है।

आज भारत में गरीबी और अमीरी की खाई बढ़ रही है, आर्थिक असमानता लगातार बढ़ रही है, गांवो में गरीबी, भूखमरी बढ़ रही है, खेती कम हो रही है। लोग शहरों की और पलायन कर रहे हैं फलस्वरूप शहरों में अनेक समस्याऐं बढ़ रही है। आज किसान आत्महत्याऐं कर रहे हैं, सर्व भूमि गोपाल की पर आज उस गोपाल रूप किसान के पास जमीन नहीं है। कृषि लाभ का सौदा नहीं रही है ऐसे में गांधी को याद करना होगा उसे अपनाना होगा तभी गांव बचेगें, देश बचेगा वर्तमान बाजारीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक मंदी, कालाबाजारी, मिलावट और अनेक मानव विरोधी गतिविधियॉ जारी है ऐसे में गांधी जी के आर्थिक विचार प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रताप सिंह : ''गांधीजी का दर्शन'' जयपुर रिसर्च पब्लिकेशन
2. सेठी जय देव : ''गांधी की प्रासंगिकता'' नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन्स, नई दिल्ली
3. राकेश कुमार झा : गांधी चिन्तन में सर्वोदय
4. चतुर्वेदी दूधनाथ : ''महात्मा गांधी का आर्थिक दर्शन'' काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
5. कौशिक आशा : गांधी चिन्तनः तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य
6. गांधी एम.के. : ''आत्मकथा'' अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर
7. गांधी एम.के. : ''हिन्द स्वराज'' अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर
8. गांधी एम.के. : ''सर्वोदय'' अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर
9. एम.एस. चतुर्वेदी : भारतीय राजनीतिक विचारकः कॉलेज बुक हाउस, जयपुर
10. कमल के.एल. : ''गांधी चिंतन'' जयपुर पब्लिकेशन हाउस, जयपुर
11. कुमारप्पा जे.सी. : ''गांधी अर्थ विचार'' वर्धा आगनवाड़ी कल्पना प्रकाशन

***

सम्प्रेषण का सशक्त अस्त्र ब्लॉग लेखन

डॉ. राजरानी शर्मा
प्राध्यापक हिन्दी
शा.के.आर.जी. कॉलेज, ग्वालियर (म0प्र0)

'काव्यं यशसेऽर्थकृते.......शिवेतरक्षतये के साथ साथ कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे' प्रयोजनों के साथ काव्य विविधमार्गी यात्रा का एक लम्बा काल तय कर चुका है। काव्य को यदि विशद अर्थों में लें तो कान्तासम्मितउपदेश अर्थात् 'सत्यं च प्रियं च' की नीति का हर अनुगामी 'संप्रे य सत्य' काव्य ही है। एक समय था जब गद्यकार भी कवि कहे जाते थे। बाणभट्ट को किसी ने लेखक नहीं कहा। 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' कहा जाता था, अर्थात कवियों की कसौटी गद्य तो है ही लेकिन कसौटी तब और तीव्र हो जाती है जब गद्य भी संप्रेष्य सहज और सीमित स्वरूप में हो। साथ ही युगानुरूप भी हो सत्यान्वेषी हो प्रयोगधर्मिता के साथ साथ समय सापेक्ष भी हो तो ऐसी समस्त विशेषताओं से मंडित एक सहज विधा वैश्विक परिदृश्य पर संजाल के माध्यम से 'ब्लॉग' के रूप में प्रचलित हुई। 'ब्लॉग' अथवा चिट्ठा लगभग डेढ़ दशक पहले अपनी उपादेयता के कारण एक नितान्त मौलिक, बेबाक, निर्भीक किन्तु हत्संवेद्य लेखन के रूप में लोकप्रिय हुआ। जिस तरह साहित्य कालातीत भी है और कालसापेक्ष भी ... शब्दवृक्ष की तरह उसकी जड़ें चिर पुरातन और चिरनूतन हैं जड़ें वेद की ऋचाओं से जुड़ी हैं तो उसकी शिखायें दृश्य माध्यम के अद्भुत विकल्प कम्प्यूटर के संजाल जगत पर भी नितनवीन आयामों को उद्घाटित कर रही हैं।

अपनी सूत्रात्मक भाषा और मोलिक अनुभूतियों के कारण ब्लॉग विश्व की हर भाषा में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर चुका है। ब्लॉग का ही हिन्दी पर्याय 'चिट्ठा' भी गद्य की नव्यतम विधा के रूप में सुपाठ्य ही नहीं समीक्ष्य और प्रशंसनीय भी बन चुका है। 1997 में सर्वप्रथम web log शब्द के रूप में यह संकल्पना जॉन बर्गर द्वारा 17 दिसम्बर 1997 को प्रयुक्त हुई जिसे Peter Merholt ने 'ब्लॉग' उच्चारण दिया। सोशल नेटवर्किंग का यह प्रभावशाली अस्त्र जब सबसे पहले 'ऑनलाइन डायरी' के रूप में प्रयुक्त हुआ तो मानो वैश्वीकरण एवं नगरीकरण के कुहासे में आम आदमी का एकान्त विभीषिका बन कर उसे संत्रस्त कर रहा था। एकांत के उन भावुक, संवेदनशील और असह्य क्षणों की ऊष्मा ब्लॉग जगत् में खुली डायरी के रूप में सामने आई। बिना लाग लपेट, बिना प्रकाशकीय दबाबों के यह त्वरित लेखन विधा जिसे 'instaneous writing' कहा गया उसे हिन्दी में सहस्राधिक संज्ञायें मिली जिस तरह हर पुस्तक हर कृति का एक शीर्षक होता है उसी तरह हर ब्लॉग हर चिट्ठे का भी एक असाधारण, भावभरा अथवा प्रयोजनमूलक शीर्षक होने लगा। विश्व परिदृश्य के साथ साथ हिन्दी में भी अनेक समेकित ब्लॉग समूह 'चिट्ठा जगत' और 'बतंगड', 'भडास', 'झरोखा' जैसे नामों से प्रचलित हुए। सर्वप्रथम टाइम्स टू गेट ए लाइफ में 1994 में लिखे Justine hall के ब्लॉग को पायनियर की संज्ञा दी। अगस्त 1999 में इवान विलियम और Mag Horihon ने blogger.com का प्रारंभ किया जिसे 2003 में गूगल ने खरीद लिया। अर्थात संजाल पर रचनात्मक लेखन की यह नव्यतम विद्या रातों रात घर–घर में अपना अधिकार जमा बैठी।

(विकिपीडिया के अनुसार) एक अध्ययन के आधार पर 16 फरवरी 2011 तक 156 मिलियन लोगों ने ब्लॉग लिखे हैं। लोकप्रियता की कसोटी पर एरिका डायमंड द्वारा स्थापित womensonthefence.com ब्लॉग खरा उतरा जिसके एक माह में 20 लाख से अधिक पाठक होते थे। आज ब्लॉग्स की दुनिया में विविधधर्मी ब्लॉग्स लिखे जा रहे हैं। एकान्त के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए रची गयी यह विधा अपनी उपयोगिता के कारण व्यावसायिक क्षेत्रों में भी लोकप्रिय हुई अतः 'विज्ञापन ब्लॉग्स' प्रकाश में आए म्यूजिक लॉग्स भी लिखे गये। एक ही रूचि प्रसंग और समान संदर्भ के लेखकों ने मिल कर समूह में ब्लॉगलेखन की परंपरा का प्रारंभ किया। 'लोगों ने उसे रोम रोम पाला। क्षणक्षण पोसा बरसों बरसों बना। मंहगी सांसों धुंधली हुई बीनाइयों से। अपने ही रक्त की रोशनियां में संभाला। गहरी लंबी होती आहों से .... अधुनातन चतुराई का यह नया अस्त्र ब्लॉग 'यह भुवन प्रेम का जाल कब, कौन धिरे बंध जाए .... नयनों में जल भर आए।' 'व्यथा एक ऊर्ध्वमुखी ज्वाल' बन कर घर घर लपकने लगी। जीवन के दहन का धुंआ उठ उठ कर प्राणों का संचार करने लगा तो Bruce Abilson ने 1998 में open diary का लांच की Brad Fitzpatrick ने live journal मार्च 1999 में आरंभ किया तो ब्लॉग व्यक्तिगत, भावनात्मक, त्वरित प्रक्रिया के रूप में कार्पोरेट और समूह ब्लॉग, शैक्षणिक ब्लॉग और शास्त्रीय संगीत के ब्लॉग के साथ साथ ब्लॉगिग में नई तकनीकों का अनवरत प्रयोग हुआ।

ब्लॉग लेखन की उपादेयता

सशक्त समसामयिक संप्रेषण अस्त्र के रूप में पूरे विश्व में लाखों करोड़ों ब्लॉगर्स अथवा चिट्ठाकारों ने अपनी मौलिकता को हस्ताक्षरित किया नितनूतन शीर्षक नित नये विषयों पर सूचना और संवेदनायें दोनों का विश्वफलक पर साझा होता देख चिट्ठाकार मानोभाव विभोर था। एकान्त से संत्रस्त ब्लागर के सामने कुनबा इकट्ठा हो गया 'प्यास को मिली एक प्याऊ .... मुक्त हुआ जीवन उबाऊ''। 'सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है।' जीवन के दिग्दिगन्त में व्याप्त अर्थछवियों के उद्घाटन के साथ साथ ब्लॉगर्स ने जीवन के नव्यतम मुहावरे को भी अर्थ प्रदान किया। सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र है ब्लॉग। निःशुल्क और सहज प्रकाश्य संप्रेषण कला है।

'विलुप्त होती भाषा जैसे गैलिक भाषा के बोलने समझने वाले ब्लॉग लेखन के माध्यम से अपनी भाषा को संजीवनी प्रदान कर रहे हैं। इसी प्रकार अन्य गंभीर मुद्दों के द्वारा विलुप्त होती प्रजातियों, भाषाओं, संस्कारों और संवेदनाओं को चिट्ठा जगत् में चर्चित करके अपेक्षित परिणामों तक पहुंचने की राह आसान हो गई है। स्वाध्याय और चिंतन समृद्ध दृष्टिकोण एवं बुद्धिजीवी अनुभव जगत के लोकव्यापीकरण के साथ साथ विश्व मानव की संकल्पना को साकार करने का सक्षम माध्यम है चिट्ठाजगत। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का अन्तराल स्वतः ही भरा जा रहा है। जैसे कार्बन प्रबंधन कार्बन चिन्ता जैसे विश्व पर्यावरण पर लिखे सशक्त ब्लॉग्स ने युवावर्ग को भी उद्वेलित किया है। संयत भाषा और नातिदीर्घ कलेवर होने के कारण यात्रा ब्लॉग, फैशन ब्लॉग, वीडियो ब्लॉग असवह और स्कैच लॉग चीसवह अर्थात फोटो ब्लॉग बुक ब्लॉग अर्थात (blook) जैसे ब्लॉग प्रचलन मे आए और मशहूर भी हुए। मौलिकता की ससम्मानरक्षा के साथ निजी अनुभूतियों की निजी शब्द राशि की साझेदारी के साथ साथ विश्व मानस के चिंतन की महक एक जागृति अभियान की तरह सकारात्मक परिणाम दे रही है।

ब्लॉग, बेबाक निर्भीक सपाटबयानी से युगचेतना की प्रतिध्वनि संजाल जगत् पर गूंज रही है तो उसमें चिट्ठाकारों का बहुत बड़ा हाथ है। अभी हाल ही में भारत की एक नन्हीं चिट्ठाकार अपूर्वा को राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित करना इस बात का प्रतीक है कि नई पीढ़ी में भी पर्याप्त संभावनाऐं हैं। 'उठाने ही होंगे खतरे अभिव्यक्ति के' यदि मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो ब्लॉग लेखन की चुनौतियों भी हैं। नैतिक एवं वैधानिक चुनौतियां भी हैं जैसे cybersmarketing और internet homicide जैसी संभावनायें अलग अपराध संसार की खिडकियाँ भी खोल रही हैं। जिसके लिए हमें अपेक्षित एवं असरकारक आचार संहिता का पालन करके संभावनाओं के नकारात्मक पहलुओं को जीतना होगा। उदाहरणार्थ 9 सितम्बर 2011 के बाद एक श्रृंखला प्रारंभ हुई जिसे war blogs की संज्ञा दी गई। "the war blogging moment took off after sep 11 as people used blogs to vent anger about the terrorist attacks though they are still commonly known as war bloggers. भारत को इस विधा की अत्यंत आवश्यकता है विकासशील देश होने के कारण हम सामाजिक परिवर्तन को संश्लिष्ट प्रक्रिया से गुजर रहे हों। ब्लॉग लेखन को आज एक संप्रेषणात्मक एवं दोतरफा पत्रकारिता (Interactive journalis) के रूप में रेखा जा रहा है।

अतः सरल, सहज, साध्य, निर्भीक, निःशुल्क एवं समसामयिक प्रहरी के के रूप में यदि ब्लॉग जगत या चिट्ठाचर्चा को लिया जाये तो अनेक संश्लिष्ट प्रक्रियाओं जैसे मूल्यबोध परिवर्तन, पीढ़ियों का अंतराल, भाषा एवं शब्दराशि का प्रसार, विरासत की सहज पहचान, मौलिक अनुभूतियों का सम्मान के साथ परंपरा और आधुनिकता का स्थान सभी कुछ इस मूल्यवान आधुनिक और सहज संप्रेष्य विधा के परिणाम के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य दर्पणः विश्वनाथ
2. संस्कृत उक्ति
3. Wikipedia : Blog writing
4. Wikipedia : Merhaltz, Peter 1999 . Peterme.com the internet archive
5. चिट्ठाजगत Internet
6. Harmanci, Reythan (2005-02-20) Times to get a life Retrived 2008-06-05
7. बल्देव वंशी : साहित्य अमृत
8. साहित्य अमृत, नवम्बर 2010 – विश्वनाथ
9. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : पारसमणि दो छुआ कविता से अनुवादक प्रयागशुक्ल साहित्यअमृत 2010
10. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
11. मुक्तिबोध

***

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा एवम् भारत

सूर्य प्रकाश शर्मा
व्याख्याता राजनीतिशास्त्र
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाडेरा

विश्व भर में लगभग दस प्रतिशत लोग विकलांग है जिनमें से लगभग 80 प्रतिशत विकासशील देशों में रहते है। विश्व की लगभग चौथाई जनसंख्या परिवार के सदस्य के रूप में विकलांगता से सीधे तौर पर सम्बन्धित है। विकलांग व्यक्तियों को समाज में अनेक अलाभकारी स्थितियों का सामना करना पड़ता है तथा प्रायः उन्हें शोषण, अपमान और भेद–भाव का शिकार बनाया जाता है। वे प्रायः उपेक्षा, अत्यधिक निर्धनता, अधिकांशतया बेरोजगारी एवम् अशिक्षा से परिपूर्ण अस्वस्थ जीवन व्यतीत करते है। नागरिक एवम राजनीतिक गतिविधियों में उनकी भूमिका प्रायः नगण्य होती है तथा राष्ट्र, समाज एवम् स्वयं उन्हें प्रभावित करने वाले मामलों में भी उनकी आवाज नहीं सुनी जाती। विकलांग बच्चों एवम् स्त्रियों की स्थिति तो और भी चिन्ताजनक हैं उन्हें दोहरे शोषण एवम् उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

विश्व में शान्ति एवम् सुरक्षा की स्थापना करना संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख उद्देश्य है।[1]सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवम् मानवीय प्रकृति की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान तथा सभी मनुष्यों के मानवाधिकारों एवम् मूलभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान की भावना को बढ़ाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना भी संयुक्त राष्ट्र का महत्वपूर्ण उद्देश्य है[2] क्योंकि सम्पूर्ण मानव जाति द्वारा बिना किसी भेद भाव के मूलभूत स्वतन्त्रताओं एवम् मानवाधिकारों का प्रयोग विश्व शान्ति की प्रभावी एवम् आवश्यक पूर्व शर्त है। अतः सन् 1945 से ही संयुक्त राष्ट्र इस क्षेत्र में निरन्तर प्रयन्तशील रहा है। 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' का पारित किया जाना इस दिशा में उठाया गया प्रथम महत्वपूर्ण कदम है। विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा इसी दिशा मे उठाया गया नवीनतम कदम है।

विकलांग एवम् संयुक्त राष्ट्र : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा सन् 1948 में पारित ''मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा'' द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को बेरोजगारी, बीमारी, विकलांगता, वैधव्य एवम् वृद्धावस्था जैसी अपरिहार्य परिस्थितियों में सुरक्षा पाने का अधिकार प्रदान किया गया।[3]सन् 1966 में महासभा द्वारा पारित नागरिक एवम् राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, द्वारा अविभेदकारी प्रावधानों का विस्तार किया गया, हालांकि जिन आधारों पर भेदभाव का निषेध किया गया उनमें विकलांगता का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया।[4]

अपने जन्म के प्रथम दशक में संयुक्त राष्ट्र ने 'कल्याणकारी' दृष्टिकोण अपनाते हुए विकलांगता की रोकथाम एवम् विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए कार्य किया। सन् 1955 के

पश्चात् विकलांगता के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण के स्थान पर 'समाज कल्याण दृष्टिकोण' को अपनाया गया। इस चरण में विकलांग व्यक्तियों के लिए अवसरों की समानता सुनिश्चित कर उनकी सामाजिक सहभागिता बढ़ाने पर बल दिया गया। 1970 के दशक में विकलांगता के प्रति एक नए दृष्टिकोण...मानवाधिकार दृष्टिकोण....का विकास हुआ। इस चरण में महासभा द्वारा अंगीकृत घोषणाओं, सिद्धान्तों, मानकों, आदि में विकलांग व्यक्तियों के मानवाधिकारों को चिन्हित किया गया तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष, 'संयुक्त राष्ट्र विकलांग दशक' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग दिवस' जैसे आयोजनों द्वारा उनके क्रियान्वयन हेतु प्रयत्न किये गये।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा विकलांगों के अधिकारों की प्रोन्नति एवम् संरक्षण हेतु निम्नलिखित घोषणाएं पारित किये

1. मानसिक विकलांगों के अधिकारों पर घोषणा 1971.
2. विकलांगों के अधिकारों पर घोषणा 1975.
3. विकलांग व्यक्तियों से सम्बन्धित वैश्विक कार्यक्रम 1982.
4. मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों के संरक्षण एवम् मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं मे ंसुधार हेतु सिद्धान्त 1991.
5. विकलांग व्यक्तियों हेतु अवसरों की समानता पर मानक नियम 1993.

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को विधिक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा दिसम्बर 2006 में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा को अंगीकृत किया गया।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा : एक परिचय

'विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा (यू एन सी आर पी डी) इक्कीसवीं सदी की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि है। इसमें विकलांग व्यक्तियों के मानवाधिकारों को चिन्हित कर हस्ताक्षरकर्ता देशों को क्रियान्विति के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है।[5]

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 13 दिसम्बर 2006 को सर्वसम्मति से पारित तथा 30 मार्च 2007 को राज्यों एवम् क्षेत्रीय समुदायों के हस्ताक्षर और अनुमोदन हेतु प्रस्तुत यह सन्धि आवश्यक संख्या में राज्यों के हस्ताक्षर एवम् अनुमोदन के पश्चात् 3 मई 2008 से अनुमोदनकर्ता पक्षों पर प्रभावी हो चुकी है।[6]

उद्देश्य

अनुच्छेद 1 में प्रतिपादित किया गया है कि प्रसंविदा का उद्देश्य सभी विकलांग व्यक्तियों द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं के पूर्ण तथा समान उपभोग को प्रोत्साहित, संरक्षित एवम् सुनिश्चित करना तथा उनकी स्वाभाविक गरिमा के प्रति सम्मान की भावना को बढ़ाना है। प्रसंविदा में गतिशील अवधारणा मानते हुए विकलांगता को किसी कठोर परिभाषा में नहीं बान्धा गया है।[7]

सामान्य सिद्धान्त

प्रसंविदा व्यक्ति की स्वाभाविक गरिमा, स्वायत्तता एवम् व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता के प्रति सम्मान, अभेद, समाज में पूर्ण तथा प्रभावी भागीदारी एवम् समायोजन, अवसर की समता, स्त्री पुरूष के मध्य समता, विकलांग बच्चों की बदलती हुई क्षमताओं में विश्वास, विकलांगता को मानवीय विविधता के अंग के रूप में स्वीकृति तथा भौतिक वातावरण, सूचनाओं एवम् आधुनिक संचार तकनीक तक विकलांग व्यक्तियों की पहुंच के अधिकार को सामान्य सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार करती है।[8]

दायित्व

प्रसंविदा से सम्बद्ध पक्षों का यह दायित्व है कि प्रसंविदा में प्रतिपादित अधिकारों को क्रियान्वित करने तथा उन सभी कानूनों, नियमों, परम्पराओं आदि को निरस्त करने हेतु विधिक, प्रशासनिक एवम् अन्य आवश्यक कदम उठाएंगे[9] जो प्रसंविदा की भावना के विपरीत है।

सकारात्मक कदम

प्रसंविदा विकलांग व्यक्तियों के मानवाधिकारों को प्रभावी बनाने हेतु सम्बद्ध देशों द्वारा जागरूकता बढ़ाना, पहुंच सुनिश्चित करना, मानवीय आपदा एवम् खतरे की स्थितियों में सुरक्षा सुनिश्चित करना, न्याय प्रक्रिया तक पहुंच सुनिश्चित करना, व्यक्तिगत गतिशीलता को सुनिश्चित करना, आवास एवम् पुनर्वास के लिए कार्य करना, आदि की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

क्रियान्वयन एवम् निगरानी

राज्यों का यह दायित्व है कि वे प्रसंविदा के क्रियान्वयन एवम् निगरानी हेतु राष्ट्रीय स्तर पर संस्थात्मक ढांचे का प्रावधान करें।[10] अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसंविदा के क्रियान्वयन से सम्बन्धित किसी प्रश्न पर विचार करने के लिए राज्यों के सम्मेलन[11] तथा क्रियान्वयन की निगरानी हेतु विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर समिति[12] का प्रावधान किया गया है।

प्रसंविदा एवम् भारत

भारत द्वारा 30 मार्च 2007 को प्रसंविदा पर हस्ताक्षर कर 1 अक्टूबर 2007 को इसका अनुमोदन कर दिया गया है। आवश्यक संख्या में राज्यों के हस्ताक्षर और अनुमोदन के पश्चात् 3 मई 2008 से प्रसंविदा प्रभावी हो चुकी है। अतः आवश्यक वैधानिक, प्रशासनिक एवम् अन्य कदम उठाकर प्रसंविदा में वर्णित अधिकारों तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं का क्रियान्वयन भारत का विधिक दायित्व है।[13]

भारतीय संसद द्वारा विकलांग व्यक्तियों के सशक्तीकरण एवम् समाज में उनकी समान भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु सन् 1995 में 'विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण एवम्

पूर्ण भागीदारी) अधिनियम' पारित किया गया। इस अधिनियम में विकलांगता एवम् उसके विविध प्रकारों को परिभाषित कर उन्हें देय सामाजिक–आर्थिक अधिकारों को साथ ही अधिकार संरक्षण तन्त्र का भी प्रावधान किया गया है। संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा की तुलना में यह अधिनियम विकलांग व्यक्तियों को सीमित अधिकार प्रदान करता है। अतः बदले परिवेश में इसमें आमूल संशोधन किये जाने की आवश्यकता है।

विकलांगता एवम् विकलांग व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण की इस भिन्नता को निम्न प्रकार दर्शायाजा सकता हैः

1. चिकित्सकीय बनाम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

भारतीय विकलांगता कानून में विकलांगता को चिकित्सकीय दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है।[14] जबकि संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा में विकलांगता को गतिशील अवधारणा मानते हुए किसी कठोर परिभाषा के दायरे में नहीं बांधा है।[15] विकलांगता भी मानव जाति में विद्यमान विविधता का ही एक रूप है।[16] विकलांगता को दीर्घकालिक व्यक्तिगत शारीरिक एवम् मानसिक अक्षमता तथा भौतिक एवम् सामाजिक पर्यावरण की बाधाओं के मध्य प्रतिक्रिया के परिणाम के रूप में परिभाषित किया गया है जिससे व्यक्ति की कार्य क्षमता नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।[17]

2. कल्याणकारी बनानम अधिकारितावादी दृष्टिकोण

भारतीय कानून में विकलांग व्यक्ति को व्यक्तिगत शारीरिक कमियों की प्रतिपूर्ति के रूप में रियायत दिए जाने के प्रावधान तो किये गये हैं किन्तु उसे अन्य नागरिकों के समान नागरिक एवम् राजनीतिक अधिकारों का पात्र नहीं समझा गया है। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा विकलांग व्यक्ति को अधिकार सम्पन्न बनाकर समाज में उसकी समान भागीदारी सुनिश्चित करने पर बल देती है।

3. क्षमता बनाम अक्षमता

भारतीय कानून विकलांग व्यक्ति की क्षमताओं के स्थान पर अक्षमताओं को अधिक उजागर करता है। इसके विपरीत प्रसंविदा विकलांग व्यक्ति की क्षमताओं पर बल देती है। यह विकलांगता को मानव जाति में विद्यमान विविधता का ही एक रूप मानती है और समाज के प्रति विकलांग व्यक्तियों द्वारा किये गये योगदान को महत्वपूर्ण मानती है[18] तथा नीति निर्माण प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने पर बल देती है।[19]

4. अधिकारों की व्यापकता

भारतीय विकलांगता कानून कल्याणकारी दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण विकलांग व्यक्तियों के लिए मात्र सामाजिक एवम् आर्थिक अधिकारों का ही प्रावधान करता है। इसके विपरीत प्रसंविदा नागरिक एवम् राजनीतिक अधिकारों का भी प्रावधान करती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा और भारतीय विकलांगता अधिनियम दो नितान्त भिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित हैं। प्रसंविदा का क्रियान्वयन भारत का अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व है। अतः भारतीय विधि व्यवस्था में निम्न क्षेत्रों में परिवर्तन/संशोधन अपेक्षित है।

1. यह आवश्यक है कि या तो विकलांग व्यक्ति अधिनियम 1995 में प्रसंविदा की भावना के अनुरूप आमूल संशोधन किये जावें।
2. भारतीय संविधान के मूल अधिकारों सम्बन्धी भाग तीन के अन्तर्गत विकलांगता के आधार पर भेदभाव का निषेध किया जावे। साथ ही शोषण तथा दुर्व्यवहार के विरूद्ध संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया जावे।
3. प्रस्तावित विकलांगता कानून में अभिभावी धारा जोड़कर यह स्पष्ट किया जावे कि अन्य सभी कानून उस सीमा तक निरस्त समझे जायेंगे जिस सीमा तक वे विकलांगता कानून के प्रावधानों के विपरीत हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 संयुक्त राष्ट्र चार्टर, अनुच्छेद 1 (1)

2 वही, अनुच्छेद 1(3)

3 मानवाधिकारों की सार्वमौम घोषणा 1948, अनुच्छेद 25

4 नागरिक एवम् राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, अनुच्छेद

5 विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा, अनुच्छेद I,

6 प्रसंविदा के अनुच्छेद 45(1) के प्रावधान के अनुसार हस्ताक्षरकर्ता राज्यों एवम् क्षेत्रीय समुदायों द्वारा 20वें अनुमोदन पत्र के प्राप्त होने के 30वें दिन यह सन्धि उन पर प्रभावी हो जाएगी।

7 प्रसंविदा, अनुच्छेद 2

8 प्रसंविदा, अनुच्छेद 3

9 प्रसंविदा, अनुच्छेद 4

10 प्रसंविदा, अनुच्छेद 33

11 वही, अनुच्छेद 40

12 वही, अनुच्छेद 34—39

13 प्रसंविदा, अनुच्छेद 4

14 विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण एवम् पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995, धारा 2, उपधारा बी.एल.एन.ओ.टी. एवम् यू।

15 संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा, प्रस्तावना पैरा ई।

16 प्रसंविदा, अनुच्छेद 3

17 प्रसंविदा, अनुच्छेद 1

18 प्रसंविदा, प्रस्तावना पैरा एम।

19 प्रसंविदा, प्रस्तावना पैरा ओ।

***

मीडिया और प्रमुख संचार माध्यम : इंटरनेट
(हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में)

अस्मा जावेद
शोध छात्रा हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

मीडिया ने आज वर्तमान समय में हमारे समक्ष एक नया सूचना संसार खोला है, दुनिया के लिए एक खिड़की की तरह! टेलीविजन ने विश्व बाजार का जो एक नया परिदृश्य बनाया था उसे मीडिया ने और आगे बढ़ा दिया है। यदि जनसंचार माध्यम और प्रौद्योगिकी को दृष्टि में रखकर देखे तो आज रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, विज्ञापन व समाचार पत्र आदि एक साथ मौजूद हैं, साथ ही यह बात भी स्वाभाविक है कि इन सबकी अच्छाईयाँ–बुराईयाँ भी यहाँ मिलेंगी। इसी सन्दर्भ में सुमित मोहन लिखते हैं कि, "जनसंचार माध्यमों ने संचार की दुनिया में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी है "[1] इसके अतिरिक्त वह आगे लिखते हैं कि, "जब संचार की प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर व्यापक स्तर पर होती है तब वह जनसंचार कहलाता है।"[2]

आज वर्तमान समय में मीडिया एक व्यापक अवधारणा है। इस युग में यह एक प्रभावशाली प्रौद्योगिकी बनकर उभरी है, तथा इस प्रौद्योगिकी ने हमारी पूरी दुनिया को ही बदलकर रख दिया है आज इसके बिना हम नहीं रह सकते हैं। इसी सन्दर्भ में डॉ0 अनिल के0 राय लिखते हैं कि, "आज जब 'सूचना' सिर्फ सूचना के रूप में नहीं बल्कि 'सूचना क्रान्ति' के रूप में दिखायी दे रही हैं। ऐसे में 'जनमाध्यमों' और 'संचार प्रौद्योगिकी' के बारे में अलग–अलग बातें करना भी बेईमानी सा प्रतीत होता है। जिससे जनसंचार माध्यम जैसे समाचार पत्र, रेडियो, टी0वी0, इन्टरनेट और सूचना तकनीकी आपस में विभेद रहित होकर, एक दूसरे के पूरक हो चुके हैं।"[3]

वर्तमान समय में मीडिया बिखरती हुई दुनिया को आपस में जोड़ने की अत्यन्त आधुनिक विकसित प्रणाली है। आज पूरे विश्व में जिस सूचना महामार्ग की होड़ मची हुई है वह इंटरनेट की असीमित सम्भावनाओं से ही उपजा हुआ है। आज इंटरनेट द्वारा हम घर बैठे ही एक जगह की खबर कुछ मिनटों में अपने समक्ष देख सकते हैं।

यदि हम मीडिया की भाषा व उसके अन्य दूसरें माध्यमों की बात करें तो आज के समय में इंटरनेट का आकर्षण लोगों में तेजी से बढ़ा है। इंटरनेट का जन्म अमेरीकी रक्षा विभाग पेन्टागन से सम्बन्धित है पेंटागन के वैज्ञानिकों ने सन् 1969 में 'एपीनेट' नामक एक योजना चलायी। A.P. (Advanced Research Projects Agency) ने प्रतिरक्षा सम्बन्धी शोध करने वाली संस्थाओं के कम्प्यूटरों को एक दूसरें के बीच संवाद सूत्र बनाने के लिए Packet Switched Network के साथ जोड़ दिया। इंटरनेट की इस तकनीक का व्यापक उपयोग (E-mail) अर्थात Electronic Mail के रूप में होता है। कम्प्यूटर पर मैसेज टाइप कर इसे भेजने का काम इंटरनेट द्वारा ही होता है। आज के समय में इंटरनेट

का आकर्षण लोगों में तेजी से बढ़ा है। "सूचना, संचार एवं संसाधनों का साझा उपयोग, नेटवर्क के मुख्य पहलू (Components Ingredients) हैं। आज के संदर्भ में नेटवर्क बहुत ही आवश्यक हो गयी है। इंटरनेट एक ग्लोबल सूचना नेटवर्क है जोकि पूरी दुनिया को अपने आप में समेटे हुए है।"[4]

"Participants in a regional workshop on 'The use of ICT to improve reporting on HIV/AIDS' say sharpened their research and internet browsing skills and also built their personal confidence in setting up electronic networks [5] In short we can say that Internet browsing and electronic networks are very important in every field in world communication and information.

इंटरनेट की शुरूआत भारत में 1995 में विदेश संचार निगम लिमिटेड (V.S.N.L) द्वारा की गयी। तत्पश्चात् अब तक इंटरनेट का विस्तार बहुत तेजी से हुआ है। बाद में व्यापारिक संगठनो, संस्थानों, अनुसंधान केन्द्रों व अन्य क्षेत्रों को भी इससे जुड़ने की अनुमति प्रदान दी गई आज इंटरनेट कनेक्शन की संख्या लगभग 50 लाख से ज्यादा हो गयी है और इंटरनेट मानव जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है।

वाशिंगटन स्थित अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ म्यूजियम्स में शासन और मीडिया सम्बन्धों के निदेशक जेसन हॉल बताते है कि अमेरिका में लभगग 17,000 संग्रहालय है और "ठीक ठाक किस्म के अधिकांश संग्राहलयों की उपस्थिति वेब पर है।"[6] इसके अलावा कई पुस्तकालयों और अन्य संस्थानों ने अपने संग्रहों को आंशिक रूप से या पूरी तरह आनलाइन उपलब्ध करवाया है। हाल कहते है कि इन्टरनेट "जो हम तक नहीं आ पाते उन तक पहुँचने का प्रमुख उपाय बन गया है।"[7]

वर्तमान समय में नई प्रौद्योगिकी के साथ भाषा में भी बदलाव दिखायी दे रहा है। विशेष रूप से अन्य भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का स्वरूप बदला है, तथा मीडिया में हिन्दी भाषा के क्षेत्र में विस्तार हुआ है क्योंकि हिन्दी भाषा जन सामान्य की भाषा है। इस भाषा के द्वारा व्यक्ति अपने विचारों की अभिव्यक्ति जितनी आसानी से कर सकता है उतना किसी दूसरी भाषा के द्वारा नहीं कर सकता। आज जबकि चीन, जापान, थाईलैंड जैसे देश अपनी भाषा और लिपि में बिना किसी रूकावट के काम कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते?अन्य भारतीय भाषाओं की बात न करें तो कम से कम हिन्दी भाषा में यह सुविधा उपलब्ध है।

सुमित मोहन अपनी पुस्तक 'मीडिया लेखन' में बताते है कि– "इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं के आगमन का पहला अवसर हिंदी पोर्टल, 'वेब दुनिया' को मिला। वेब दुनिया के संस्थापक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री विनय छजलानी हैं इंटरनेट पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के समन्वय विषयक उनकी परिकल्पना का परिणाम है वेब दुनिया। विश्व की पहली वेबसाइट 'नई दुनिया कॉम' पहली बहुभाषी ई–मेल सेवा 'ई–पत्र और पहला हिन्दी पोर्टल 'वेब दुनिया कॉम इंटरनेट पर लाया गया, तब उम्मीद नहीं थी कि इसका इतना स्वागत होगा।"[9]

इसके अतिरिक्त वह आगे लिखते हैं कि– "इस दिशा में सी–डैक पुणे ने, 'लीप आफिस' आई.एस.एम. उपलब्ध कराएँ हैं। इससे हमारी समस्या बहुत कुछ हल हो चुकी है।"[10] इसी में वह आगे बताते हैं कि, "कई विदेशी कम्पनियाँ भी इस प्रयास में जुटी हैं। जैसे–अमेरिकन कम्पनी ट्रांसपेरेन्ट लैंग्वेज की ओर से तैयार किया गया विश्व की सौ भाषाओं का सॉफ्टवेयर 'यूनीटाइप ग्लोबल राइटर 98' जिसमें हिन्दी ही नहीं संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, मराठी, बंगाली, तमिल, तेल्गू के फॉण्ट एक ही की–बोर्ड पर उपलब्ध हैं।"[11] उपर्युक्त कथन द्वारा हम अंग्रेज़ी भाषा के अतिरिक्त मीडिया, इंटरनेट और हिन्दी भाषा के सम्बन्ध को साफ रूप में देख सकते हैं और आने वाले समय में उसकी उपलब्धि का अनुमान स्वयं लगा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सुमित मोहन बताते हैं कि "इंटरनेट को स्थानीय भाषाओं के और अधिक अनुरूप बनाया जाए। इसी का परिणाम है हिन्दी सहित नौ भाषाओं में डोमेन नेम की शुरूआत। 'नेटवर्क सॉल्यूशंस' के एशिया–प्रशांत क्षेत्र में मैनेजिंग डाइरेक्टर अर्थात चांग के अनुसार उनकी कम्पनी द्वारा दी जा रही इस सुविधा में भाषाओं की सीमाएँ टूटेंगी और लोग अपनी मातृभाषा में इन्टरनेट पर आसानी से और ज्यादा से ज्यादा लोगों के साथ संचार कर सकेंगे।"[12] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अपनी मातृभाषा में इन्टरनेट का प्रयोग करना संचार के माध्यम में और अधिक सुविधा प्रदान करेगा तथा इसके द्वारा स्थानीय भाषाओं को अपने अनुरूप बनाया जा सकेगा।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुखद सम्भावनाओं के साथ यह अनुमानित है कि हमारे देश में जिस गति के आज मीडिया ने हर क्षेत्रों में अपना व्यापक विस्तार किया है यह हमारे देश के लिए अत्यन्त गर्व की बात है। साथ ही आज जिस प्रकार इंटरनेट का प्रचलन बढ़ रहा है, एक समय ऐसा आएगा कि व्यक्ति इन्टरनेट का प्रयोग अपनी मातृभाषा में करेंगे। दुनिया में अंग्रेज़ी न बोलने वाले देश इसका उदाहरण है। यदि आपको ऐसा लगता है कि इन्टरनेट की भाषा सिर्फ अंग्रेजी है तो शायद आप गलत है 45 प्रतिशत जनसंख्या के लिए नेट पर अंग्रेजी दूसरी भाषा है, जो लोग इंटरनेट का प्रयोग करते हैं।

सन् 2005 में लगभग 46 लाख व्यक्ति इंटरनेट का प्रयोग कर रहे थे। जबकि आज 6 वर्ष बीत चुके है तो आप इसकी बढ़ती हुई संख्या का अनुमान स्वयं लगा सकते हैं और यह संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। और अब जल्द ही वायस सर्फिंग सेवा शुरू की जायगी। इसके साथ ही मीडिया की एक भाषा व माध्यम के रूप में इंटरनेट मानव जीवन के हर क्षेत्र जैसे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है। इन्टरनेट के सामाजिक उपयोग में चिकित्सा व शिक्षा का क्षेत्र मुख्य स्थान रखता है। इसके माध्यम द्वारा देश एवं विदेश के बड़ें से बड़े पुस्तकालयों में उपलब्ध अंग्रेज़ी व हिन्दी पुस्तकों को आसानी से पढ़ा जा सकता है। कुल मिलाकर इंटरनेट का परिदृश्य हिन्दी भाषा व हिन्दी भाषी समाज के लिए बहुत उज्जवल व उन्नतिपूर्ण है जिसे हम आने वाले भविष्य में देख सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोहन, सुमित, मीडिया लेखन, (मेरी अपनी बात), प्रथम संस्करण, 2005, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. वही, पृ0 16, 17
3. राय डॉ0 के0 अनिल, संचार प्रोद्योगिकी एवं जन माध्यम, (आमुख), संस्करण, 2006, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. वही, पृ0 23
5. File// localhost/H:/Role% 20 of % 20 women % 20 in % 20 communication % 20 and % 20 information. htm.
6. स्पैन, सम्पादक लारिंडा कीज लौंग, अंक–5, सितम्बर/अक्टूबर, 2007, पृ0 22, प्रकाशक, लैरी श्वार्त्ज़
7. वही, पृ0 22
8. मोहन, सुमित, मीडिया लेखन, प्रथम संस्करण 2005, पृ0 102, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
9. वही, पृ0 102
10. वही, पृ0 102
11. वही, पृ0 103

***

वैश्वीकरण : भारत के संदर्भ में परिप्रेक्ष्य और चुनौतियां

सुमित्रा कुमारी
शोध छात्रा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. राजेन्द्र सिंह
व्याख्याता
जे.डी. पी.जी. कॉलेज, जयपुर
डॉ. महिपाल सिंह

वर्तमान में विश्व का प्रत्येक देश वैश्वीकरण व इसकी नीतियों से प्रभावित है। अनेक विद्वानों व शोधार्थियों ने इस पर लिखा बोला व शोध किया है। फिर भी वैश्वीकरण के अनेक पहलू ऐसे है जो अनछुए रह गये है। जिसमें से वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव भी है। भारतीय समाज के कुछ हिस्सों पर इसका काफी नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है लेकिन वो किस रूप में है ये जानना काफी कठिन है। प्रस्तुत लेख में इसी नकारात्मक प्रभाव का अध्ययन किया गया है। भारत में वैश्वीकरण के सीधे प्रभाव का विश्लेषण कर पाना एक कठिन कार्य है। खास तौर से भारतीय समाज में व्याप्त निर्बन्धनों को ध्यान में रखते हुए यह एक कठिन कार्य है। वैश्वीकरण का प्रभाव रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, समाज, संस्कृति, पर्यावरण, जैव विविधता आदि सभी पर निश्चित रूप से पड़ा है। ये प्रभाव कई स्थानों पर काफी उलझा देने तथा अन्तर्द्वन्द्वकी स्थिति पैदा करने वाला प्रतीत होता है।

वैश्वीकरण सामाजिक रिश्तों में घटती दूरियों व सीमारहित विशेषताओं की प्रक्रिया है जिसमे विश्व एक होता जा रहा है। इस प्रक्रिया के द्वारा अब मानवीय जीवन का क्षेत्र विस्तृत हो गया है।[1] आज विश्व के एक हिस्से मे घटने वाली सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक कार्यों व नीतियों का प्रभाव से लगभग पूरा विश्व ही प्रभावित होता है। साथ ही प्रत्येक स्थान की संस्कृति व राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव पूर्ण विश्व पर पड़ता है। हाल ही में हुई घटनाओं जैसे लीबिया, यमन, मिस्त्र आदि अनेक देशों में तानाशाही का विद्रोह देखा जाये तो वैश्वीकरण का ही परिणाम है। कैटरीना किनवैल व क्रिस्टीना जोनसन के अनुसार वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें स्थानीय संस्कृति तथा स्थानीय लोगों को ध्यान में रखते हुए विचारों, घटनाओं व संस्कृति को समझा जाता है तथा विचारों को व्यक्त किया जाता है।[2]

वैश्वीकरण में उत्पादन उपभोग व जीवन स्तर को सीमाओं से परे ध्यान में रखकर किया जाता है। इसमें आर्थिक कार्यविधि भी सम्मिलित है। अश्विनि.के.रे. के अनुसार वैश्वीकरण कोई नया तत्व नहीं है। शीतयुद्ध के पश्चात् अनेक देशों ने आपसी समझ व सामंजस्य की नीति को बढ़ावा दिया जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय खेलों, क्रिकेट, टेनिस, आदि से व्यक्त किया गया है। वैश्वीकरण आज की घटना नहीं है। यह सैकड़ों सालों से चल रही है। यदि इतिहास की तरफ से देखे तो पायेंगे मध्यकाल से ही बड़े स्तर पर श्रमिको, दासों व धन का आवागमन प्रारम्भ हो गया था। देखा जाये तो साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद वैश्वीकरण का ही एक रूप था अर्थात एक ही सत्ता विश्वव्यापी थी।[3]

आज विश्वस्तर पर अनेक देशों की अर्थव्यवस्थाओं के मध्य प्रतिस्पर्धा व्याप्त है। यह प्रतिस्पर्धा खेलों, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रत्येक क्षेत्र में देखी जा सकती है। इसके पीछे मुख्य कारण आर्थिक कारणों को माना जा सकता है। आर्थिक कारणों व विचारधाराओं के साथ ही विश्व की अनेक नीतियों को देश आपस में जोड़ रहे है। देखा जाये तो उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण आर्थिक विकास की अवधारणायें है जिन्हें कि विकास के क्षेत्र में रामबाण माना जा रहा है।

इसी प्रकार तकनीकी क्षेत्र में भी वैश्वीकरण का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। पलक झपकते ही विद्युत तकनीक व इंटरनेट द्वारा सूचना व चित्रों का प्रवाह पूरे विश्व में एक साथ हो रहा है। किसी भी ब्लू प्रिंट या तकनीकों का प्रवाह प्रकाश की गति से हो रहा है।[4] वर्तमान में विश्व में विश्व व्यापार श्रमिकों का अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, प्रवासी श्रम तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संघ, आई.बी.आर.डी., विश्व बैंक आदि से सम्बन्धित निर्णय अमेरिका अकेला ही वैश्वीकरण की शर्तों व नियमों का निर्धारण कर रहा है और इसे सम्पूर्ण विश्व पर थोप रहा है। अन्य देशों की बहुल संस्कृति के लिये व्यापकता को कम कर रहा है।[5]

पश्चिमी देशों अमेरिका आदि प्रायः सभी प्रकार के निर्बन्धन विकासशील देशों द्वारा आयात किये जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं पर करो को थोपा जा रहा है। उनकी यह नीति व्यापार को पर्यावरण व श्रम मानको से जोड़ती है जोकि नवसंस्कारवाद की दिशा की ओर जाता है। वे अपनी तकनीकियों को भी छिपाते है तथा इनका प्रयोग सैन्य सम्बन्धी व अन्य सामान्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं में करते है। इस तरह आयात से बचाने के दो कारण है – एक विकासशील देशों में प्रौद्योगिकी का विकास न हो पाये जिससे की उन्नत प्रौद्योगिकी में विकासशील देश प्रतिस्पर्धी न बन पाये। साथ ही विकसित देशों का क्षेत्राधिकार बना रहे जिससे कि विकासशील देश उन पर निर्भर बने। विकसित देशों द्वारा लगातार यह कोशिश की जा रही है कि उदारीकरण के नाम पर विदेश व्यापार द्वारा विकासशील देशों पर दबाव बनाया जा रहा है तथा एकाधिकार तथा अवांछित व्यापार नीति के लिए सरकारी स्तर पर कुछ परिवर्तन किये जाये या उसको बदल दिया जाये। विकसित देशों द्वारा आई.एम.एफ. व विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं के द्वारा उदारीकरण के नाम पर विकासशील देशों पर दबाव कुछ इस तरीके से डलवाया जा रहा है जैसे पुलिस वाले कमजोर लोगों पर दबाव डालते है।

इसके पीछे मुख्य कारण समाजविद यह मानते है कि वैश्वीकरण वैश्विक मानव हितों को प्रस्तुत नहीं करता क्योंकि संस्कृति स्थानीय होती है तथा उसी के अनुसार लोगों के व्यवहार व परम्पराऐं होती है जिसका निर्धारण काफी हद तक भौगोलिक परिस्थितियों के द्वारा होता है।[6] जोसेफ स्टीलीटिज ने अपनी पुस्तक ग्लोबलाईजेशन एण्ड इटस् डिसकंटेंट में यही लिखा है कि पश्चिमी विकसित देशों द्वारा विश्व व्यापार संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संघ जैसी संस्थाओं के माध्यम से निजीकरण, उदारीकरण व स्थायीकरण की प्रक्रिया को निश्चित तौर से अव्यवस्थित कर रहा है और इसके निर्देशों के अनुसरण करने के कारण तीसरी दुनिया के कई देश 1960–70 के दशक से भी बुरी स्थिति में पहुंच गये है।[7]

वैश्वीकरण के गंभीर प्रभावों की चर्चा डरबन ने 2002 में हुये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में की है। तीसरी दुनिया के द्वारा विउदारीकरण का मुद्दा उठाया गया। यू एन के सैक्रेट्री जनरल द्वारा प्रस्तुत किये गये आंकड़े चौकाने वाले थे। इसके अनुसार वैश्विक विश्व में 86 प्रतिशत निजी उपभोग विश्व के केवल 20 प्रतिशत धनी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। आज धनी देश विश्व जी.डी.पी.का 60 प्रतिशत से अधिक रखते है लेकिन इन देशों में विश्व की कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत ही है। आज अनेक देशों द्वारा वैश्वीकरण को अपनी ओर बढ़ने से रोकने के प्रयत्न किये जा रहे है तथा इसके विरूद्ध आवाज उठाई जा रही है।[8]

विश्व समाज संघ की ब्राजील में हुई बैठक में एक लाख से भी अधिक प्रदर्शनकारियों ने वैश्वीकरण की उन नीतियों का जिनका निर्माण अमेरिका व जी–8 देशों द्वारा किया गया था, बड़े पैमाने पर विरोध किया गया तथा इन नीतियों को सिरे से नकार दिया। इन प्रदर्शनकारियों की संख्या ने सम्पूर्ण विश्व व शोधार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।[9] विकासशील देशों में दस लाख से भी अधिक लोग झुग्गी झोपड़ियों में रहते है तथा 800 मिलियन लोग लगभग रोज भूखे सोते है। 245 मिलियन बच्चों को काम करना पड़ता है। गरीब देश और गरीब होते जा रहे है। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों ने 1.6 ट्रिलियन डॉलर का धन उधार लिया है। 2004 में इन देशों से 300 बिलियन डॉलर धनी देशों को गया।[10]

उपरोक्त तथ्यों से यह साफ होता है कि वैश्वीकरण ने बहुत बड़ी संख्या में तीसरी दुनिया के देशों को बुरी स्थिति में ला दिया है। इसको इस रूप में भी देखा जा सकता है कि जब अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक जुड़ाव के बढ़ने पर देश में राज्य स्तर पर सरकार की शक्ति व पकड़ कम हो जाती है और वो लम्बे समय तक विचारों के प्रवाह और आर्थिक वस्तुओं को उनकी सीमा मे बांधकर नहीं रख सकते है और अन्तर्राष्ट्रीय नीति निर्धारक का महत्व भी बहुत हद तक अक्रियाशील हो जाता है। इन देशों की राज्य शक्ति बहुत कम हो गई है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां जो बहुत अधिक संख्या में व बहुत जगह बहुत सी सरकारों से भी अधिक शक्तिशाली हो गई है, केन्द्रीय अमेरिका व लैटिन अमेरिका में वृद्धि कर रही है।[11]

1991 के बाद में भारत भी तीव्र रूपांतरण में चल रहा है। आर्थिक सुधार व औद्योगिक सुधार व श्रमिक सुधार कृषि में सुधार व सेवा क्षेत्र सभी एल पी जी की नीतियों का ही परिणाम है। लेकिन इन सुधारों के लाभ समान नहीं है। यह समाज में असमानता के लिये उत्तरदायी है। वैश्वीकरण के कारण पिछले 21 वर्षों में असमानता ने भारत में नाटकीय ढंग से आसमान की ऊंचाईयों को छुआ है। प्रभावी समूहों द्वारा अपने स्त्रोतों को प्रयोग में लेने के विशेषाधिकारों को बढ़ाया है जबकि थोड़ी सी ही मात्रा वैश्विक व्यवसायिक संगठनों को करने का संकेत मात्र है।

अश्विन के. राय कहते है कि इन सुधारों ने आर्थिक वृद्धि को असमान रूप से बढ़ाया है। 1990 के मध्य में जी डी पी की वृद्धि दर 7.5 प्रतिशत वार्षिक से अधिक पहुंच गई। कृषि वृद्धि दर भी ऊंची रही। सामाजिक सूचक जैसे – शिक्षा, जन्म दर, मृत्यु दर में भी सुधार हुआ। उच्च वृद्धि दर तुलनात्मक रूप से

असमान रूप से वितरित हुई। जिसमें गरीब लोगों की संख्या में वृद्धि को नेतृत्व किया और तो और क्षेत्रीय विभिन्नता भी सिमट गई जो उपनिवेशवाद के युग में भी थी।[12]

पिछले दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था ठीक तरह से बढ़ रही है। 200–300 मिलियन लोग (जो मध्यम वर्ग कहलाता है) ऊपर बैठे है लेकिन 700–800 मिलियन लोग वे है जो इस वृद्धि प्रक्रिया में पूरी तरह से भाग नहीं ले रहे है। यह स्थिति वास्तव में इतनी अधिक संख्या में लोगों की है जो ध्यान देने योग्य है। भारतीय संविधान के भाग–4 में कुछ उद्देश्य बनाये है वे है–समाजवादी तरीके से एक बहुत बड़े वर्ग को लाभान्वित करना। भारत की जनसंख्या अगले पचास वर्षो में 1.5 से 1.6 अरब हो जायेगी। इस शताब्दी के अगले अर्द्धकाल में सरकार को बहुत ही अधिक बदलाव करने पड़ेंगे। यू एन मानव विकास रिपोर्ट सन् 2011 के अनुसार भारत का स्थान 134 कुछ पड़ौसी देशों से पीछे था जैसे श्रीलंका, मलेशिया आदि। अभी यह स्थिति कुछ ही क्षेत्रो में छेड़ी गई है अन्यथा यह बहुत बड़ी है। निष्कर्ष यह है कि प्रशासन का एक युग बीतने के बाद एल पी जी की नीतियों को सिर्फ गरीब व वंचित भारत को सुधारने और इसने आलोचनात्मक रूप में एक उपभोक्ता मध्यम वर्ग का समूह जो इससे भिन्न नहीं है, को ध्यान नहीं दिया।

आजकल एक नया ही नव–उदारवाद वैश्वीकरण आ रहा है। यह एक सिद्वान्त में नहीं है। यह सशक्त राज्यों के द्वारा लाया जा रहा है। फ्रंट लाइन ग्रुप के सुकुमारम मुरलीधरन के अनुसार आज अच्छे कार्य वेलफेयर राज्य की वैश्वीकरण के दौर में आवश्यकता नहीं है परन्तु समाज कल्याण के राज्य को इसके बारे में सोचना पड़ेगा। वैश्वीकरण ने सरकार की राष्ट्रीय नीति की क्षमता व क्षेत्र को नियंत्रित कर लिया है। राज्य के नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिऐ सीधा हस्तक्षेप मुक्त बाजार द्वारा किया जा रहा है। यह विश्वास की प्रभुत्वपूर्ण विचारधारा है। अन्त में हम यही कह सकते है कि वैश्वीकरण राष्ट्रीय संप्रभुता में कमी का परिणाम है। विकासशील देशों जैसे भारत आगे बढ़ रहा है, विकसित देशों की अर्थव्यवस्था में एकीकरण की ओर और इन अर्थव्यवस्था पर और अधिक आश्रित होता जा रहा है। कुछ भी स्वयं आत्मवालम्बी वृद्धि को प्रकट करना चाहिए। देश को सलाह है कि उसे खाद्यान्न उत्पादन व अन्य आवश्यक वस्तुओं और सामरिक वस्तुओं में आत्म निर्भरता को प्राप्त करना नहीं छोड़ना चाहिए। कृषि व डेयरी क्षेत्र को विदेशी कम्पनी के लिये खोलने पर सरकार को इनका ऐहतियात के तौर पर दलाली, ट्रांसपोर्ट व भण्डारण इन उत्पादनों पर निगरानी रखनी चाहिए। इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में भी ऐसा ही करना चाहिए। देश में सभी प्रकार की परिस्थितियाँ इस विषय में रखी है। यह एक बड़ी बहस का विषय है कि एक नीति त्याग कर दूसरी नीति को अपनाये। विश्व बैंक और विश्व मुद्रा कोष की ओर नीतियो में सलाह के लिये देखना छोड़ना पड़ेगा।

भारत में लगभग 6.5 लाख गांव और शहरी झुग्गी झोपड़ियाँ है जहाँ जीवन का स्तर बहुत ही निम्न है।[13] अर्जुन सेन गुप्ता जो अर्थशास्त्री है कहते है कि विकास मानव का अधिकार है, भारत जैसे गरीब देशों में उच्च आर्थिक विकास दर के स्वप्न को (जो विश्व बैंक की इच्छा है जो कहता है कि आर्थिक वृद्धि गरीबी को कम कर देती है) न दिखाकर न्याय का वितरण प्राथमिकता पर रखना चाहिए।[14]

विकास का दूसरा पहलू न्याय को प्राथमिकता के साथ बांटना है जो डब्ल्यू टी ओ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक की पंच लाईन को चेताता है कि बिना कठोर निर्णय के यह सम्भव नही है।[15] हमारी सरकार को कम से कम कुछ सामाजिक व राजनीतिक शर्तों पर काम करना चाहिए जोकि विकास की गतिविधियों की सफलता में अनिवार्य है। यह राज्य द्वारा नियंत्रित और बाजार बलों द्वारा नियंत्रित है।[16] यह सभी काम बड़े स्तर पर होने चाहिए जिनमें सभी को शिक्षा, सभी के लिये स्वास्थ्य सेवा, सभी को रोजगार और सामाजिक सुरक्षा और हाशिये पर आये समूह को समाज की मुख्य धारा ने उनके सशक्तिकरण के आधार पर वापिस लाना है। हाल ही के शोध बताते है कि देश जिन्होनें उदारीकरण की नीति को सफलतापूर्वक लागू किया, न्यूनतम सामाजिक राजनीतिक शर्तों को लागू करने के बाद में। अतः यहां पर पर कोई उत्तेजक प्रभाव वैश्वीकरण की नीति का सामाजिक स्तर पर विरोध देखने को नहीं मिला।[17]

भारत ने किसी पृथक्करण की नीति को नहीं अपनाया जबकि यह ऐसा कर सकता है। सरकार को वैश्वीकरण के लिये ऐसा करना चाहिए था क्योंकि यह कोई प्रौद्योगिकी करण न होकर यह एक राजनीतिक इच्छा थी। भारत को विकसित देशों के समान वृद्धि करनी चाहिए। वैश्वीकरण अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों पर नियंत्रण करने का कोई अधिकारपत्र नहीं देता है। भारत को विश्व अर्थव्यवस्था में सशक्तीकरण के रूप में इसे एक हथियार के रूप में प्रयोग करने में सक्षम बनना होगा। भारत की सरकार को न्यूनतम सामाजिक व राजनीतिक नीतियों को प्रधानता देनी चाहिए जो विकास की सफलता की गतिविधियों को एकीकरण दे। भारत को आधारभूत सरंचनागत विकास के लिये बहुत सारे निवेश को देश में ही खोजना चाहिए जैसे मानव स्त्रोत विकास, सामाजिक क्षेत्र में विकास और शोध विकास आदि। विदेशी पूंजी व प्रौद्योगिकी आदि पर निर्भरता कम करनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 Steve Smith and John Baylis, The Globalization of world Politics, OUP, New York, 1997, p.-14.

2 Catarina Kinnvall and Kristina Jonsson, "The Global Local Nexus Revisited : Constructing Asia in time of Globalization", in Catarina Kinnvall and Kristina Jonsson eds., Globalization and democratization in Asia, Routeldge : London & New York, 2001.

3. Aswini K., Ray., "Globalization and Democratic Governance : The Indian Experience" in Catarina Kinnvall and Kristina Jonsson eds, Globalization and democratization in Asia, Routeldge : London & New York, 2001.

4 Ibid.

5. Harshe, Rajen, "The Challenges of Globalization and some Critical Reflections" in B. Ramesh Babu, ed, Globalization and the South Asian State, New Delhi : South Asian Publishers, 1998 pp-22-26.

6. Shiva Vandana, "My Vision of India : 2047 A.D. Mainstream, December 22, 2001 P. 73
7. Joseph Stiglitz, Globalization and Discontent, New Delhi : Penguin Books. 2002
8. Atul Bhardwaj, "Understanding the Globalization Mind Game" In Strategic Analysis Vol. 27 No. 3,2003, pp-309-330, New Delhi-IDSA.
9. "Hindu" New Delhi January 26, 2005.
10 Ibid.
11 Asha Kaushik, "Globalism and Swaraj" in B. Ramesh Babu, ed. Globalization and the South Asian State, New Delhi : South Asian Publisher 1998, pp-36-37.
12. Aswini K. Ray, No. 3 pp-45-46.
13. Dubey, Muchkund WTO : An Unequal Treaty, New Delhi: New Age Publishers. 1996
14. Joseph, Stiglitz, Globalization and its Discontent, New Delhi : Penguin Books. 2002
15. Ray, A.K. The Global System in a Historical Perspective : A view from Periphery,". VRS Monograph Series, No. 272, Institute of Developing Economies, Tokyo. 1996
16. Scott, A,. ed. The Limits of Globalization London : Routledge,1997
17. Yurlov, Felix N, "Globalization, Inequality and Threat to Sustainable Development", World Affairs, 5 (1) Jan-Mar, 2001 pp-36-53.

***

अनुभूतियों के आईने में व्यक्तित्त्व की तलाश : मोहन राकेश के विभिन्न प्रयास

प्रोफेसर सन्दीपना शर्मा
हिन्दी विभाग
डी.आर.वी., डी.ए.वी., महाविद्यालय, फिल्लौर, जालन्धर

मोहन राकेश जयशंकर प्रसाद के उपरान्त कई वर्षों बाद सहसा उदय होने वाला एक ऐसा जाज्वल्यमान नक्षत्र है जो देखते ही देखते हिन्दी नाट्य साहित्य के निर्मल गगन पर छा गया और उसी नाट्य आकाश पर अपनी प्रतिभा प्रकाश की रेखाएँ सदा के लिए स्थापित कर गया। मैंने मोहन राकेश को सदैव एक अन्वेषक के रूप में पाया है जो सदैव नाट्य प्रयोगों से जूझते रहे और उन्होंने हिन्दी रंगमंच को नया अर्थ व दिशा प्रदान की। अपने नाटकों के माध्यम से आधुनिक मानव की पीड़ा और संत्रास को समझते हुए मोहन राकेश ने उन के सम्पूर्ण जीवन की झलक अपनी लेखनी में अभिव्यक्त की है। मोहन राकेश का कृतित्व नाट्य साहित्य, उपन्यास, कहानी संग्रह तक ही सीमित नहीं अपितु उन्होंने यात्रा–वृत्त, लेख, निबन्ध, डायरी, अनुवाद, बाल–साहित्य पर भी लेखनी चलाई है। उनके समस्त कृतित्व को इस प्रकार संयोजित किया जा सकता है, जो उनके द्वारा 1950 – 1975 ई. के मध्य लिखा गया –

1. **नाट्य साहित्य** – आषाढ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे, पैर तले की ज़मीन, अण्डे के छिल्के तथा अन्य एकांकी और बीज नाटक, रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक।
2. **उपन्यास साहित्य** – अंधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल, स्याह और सफेद, काँपता हुआ दरिया, कई एक, अकेले।
3. **कहानी साहित्य** – नन्हीं, इन्सान के खण्डहर, नए बादल, जानवर और जानवर, एक और जिन्दगी, फौलाद का आकश, मेरी प्रिय कहानियाँ, आज के साए, रोये–रेशे, एक एक दुनियाँ, मिले जुले चेहरे, एक घटना (112 कहानियाँ), मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ।
4. **एकाँकी** – कर्फ्यु।
5. **निबंध साहित्य** – परिवेश, बकलम खुद, मोहन राकेश साहित्य और संस्कृति, रंगमंच और शब्द, कुछ और अस्वीकार, नयी निगाहों के सवाल, हाशिये पर ।
6. **प्रकीर्णक लेखन**

   क) डायरी – मोहन राकेश की डायरी, जीवन चरित्र–समय सारथी

   ख) अनुवाद – मृच्छकटिका, शकुन्तला, एक औरत का चेहरा।

   (ग) काव्य –दो कविताएँ।

   (घ) यात्रा–वृत – आखिरी चट्ान तक।

(च) **सम्पादन** – पांच पर्दे।

(छ) **बाल साहित्य** – बिना हाड मांस के आदमी

7. **अप्रकाशित साहित्य** –

(क) **उपन्यास साहित्य** – स्वाह और सफेद, काँपता हुआ दरिया, कई एक अकेले।

(ख) **निबन्ध** – रंगमंच और शब्द, यात्रा वृत्त, पत्तझड़ का रंग मंच।

उपरोक्त वर्णित रचनाएँ मोहन राकेश के प्रभावशाली लेखन के प्रामाणिक दस्तावेज है। समाज का सीधा व प्रत्यक्ष अंकन उन की कृतियों में देखा जा सकता है। उन्होंने सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों का चरित्रांकन अपनी विभिन्न रचनाओं (कभी नाटकों के माध्यम से, तो कभी यात्रा वृतान्त व लेखों) के माध्यम से किया हैं।

उन का लेखन किसी विशेष राजनैतिक विचारधारा द्वारा संचालित होने की अपेक्षा जीवन के साथ गहराई से जुड़ा है। जो जीवन की विसंगतियों में अपनी अभिव्यक्ति खोजता है। इसलिए उन्होंने अपने लेखन में मूलरूप से आज के मनुष्य की टूटन, उसके अकेलेपन, बिखराव आदि को अभिव्यक्ति दी है।

मानव जीवन के मूल्यों में जो बिखराव आ गया है उस बिखराव का अंकन राकेश के साहित्य में सर्वत्र देखा जा सकता है। मनुष्य के अकेलेपन की घुटन और टूटन यद्यपि निर्मल वर्मा के साहित्य में भी प्रखर रूप से देखी जा सकती है। परन्तु राकेश की रचनाओं में यह घुटन और टूटन अधूरेपन व मानसिक अन्तर्द्वन्द्वके साथ मुखरित हुई है, जो उन के सम्पूर्ण लेखन में व्याप्त है।

अनुभूतियों के दौर से गुजरता मोहन राकेश

''पिता के साहित्यिक संस्कारों ने मोहन राकेश को गहराई से प्रभावित किया तो संस्कृत साहित्य के अध्यक्ष ने उन में कलात्मक पूर्णता तथा सौन्दर्या बोध को निखारा। पिता की बैठक में, मित्रों के बीच वाल्मीकि से लेकर मेंथिली शरण गुप्त तक की आलोचना चलती थी। इसी के साथ अंग्रेजी साहित्य तथा देश–विदेश के साहित्यों की नवीन गतिविधियों के अध्ययन ने राकेश को परिमार्जित कर, युग सापेक्ष बनाया।''[1] लिखने का आरम्भ संस्कृत भाषा में हुआ – उनके अध्यापक पण्डित राधारमण उन की रचनाओं को सुसंस्कृत रूप देते, लेकिन जल्दी ही उन्होंने हिन्दी में लिखना आरम्भ कर दिया। उन की पहली कहानी सरस्वती में प्रकाशित हुई।

मोहन राकेश के साहित्य में उन के जीवन की वह घटना अंकित नहीं है। जिस ने मदन मोहन को लेखक मोहन राकेश बनाया, वह घटना है उन के पिता की असामायिक मृत्यु। सोलह वर्ष की कच्ची संवेदनशील उम्र की एक रात पिता के शव के साथ गुजारी थी जिस के लिए मकान मालिक के लड़के ने घोषणा कर दी थी। ''मैं मुर्दा उठाने नहीं दूँगा। जब तक किराया अदा नहीं किया जाता, में किसी को मुर्दे को हाथ नहीं लगाने दूँगा'' ।[2]

दूसरे दिन किशोर बालक राकेश को पता चले बिना ही न जाने कब माँ के हाथों की चूड़ियाँ बेच कर किराया चुकाया गया था। उस के बाद ही मृत शरीर का क्रिया कर्म सम्पन्न हो सका। 'गर्दिश के दिन' में अपने को व्यक्त करते हुए राकेश कहते है। ''वह नहीं समझता था कि उसके लिखे शब्दों में अनायास ही जो एक कटुता घुल जाती है उस का वास्तविक स्त्रोत अन्दर का वह रिसता हुआ बिन्दु ही है।''[3]

स्वयं लेखक के शब्दों में, ''मगर उस रात खिड़की की सलाखों के पास, आकाश की गहराईयों में, न जाने क्या कुछ देख लिया था, वह सब तो बीत चुका था और वह भी जो बीत रहा था और जिसे अभी बीतना था.... आने वाला कल बिजली की तारों तथा पेड़ों की टहनियों से परे कभी जुगनु की तरह चमक जाता था, कभी सितारों की तरह झिलमिला उठता था।''[4]

सोलह साल की उम्र में जिन्दगी ने एक चौखटे में फिट कर दिया था। जैसे भी हो, अपने को उस चौखटे के आकार में ढालना था। आँखे आसपास की जिन्दगी के प्रति बहुत सतर्क हो रही थी। अपने से बाहर घर को और घर से बाहर सामाजिक बंधनों को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने लगी थी।

वह बुदबुदाता प्रेरणा स्त्रोत उन्हीं दिनों प्रवाहित हो उठा था, जब उन छोटे हाथों को थाम विधवा माँ ने पूछा था – ''तू अब से मेरी रखवाली करेगा?'' लड़का सकपका गया कुछ कह नहीं पाया। माँ का भाव कठोर हो गया। उस ने लड़के की कलाई कस कर पकड़ ली। ''नहीं करेगा?'' बालक ने काँप कर सिरहिला दिया, ''करूँगा''। ''भाई बहनों की पालना करेगा?'' लड़का सोच में पड़ गया। बहन उससे डेढ़ साल बड़ी हैं उसकी पालना वह कैसे करेगा? ''नहीं करेगा?'' ''करूंगा'। माँ की ममता उबल पड़ी उसे छाती से लगा दर्द धोती रही। यही वह बिन्दु था जहाँ से मोहन राकेश उस स्त्रोत की धारा में बहने लगे। किशोर आयु में ही लोगों के चेहरों की परतें उस के सामने खुलने लगी। पिता की मृत्यु के बाद शोकसभा में बहुतों के भाषण सुने लेकिन फिर किसी को देखा नहीं। सभाओं, भाषणों की निरर्थकता वह समझता था, बनावटी चेहरों की असलियत भी पढ़ सकता था। उस आयु में ही दिखावटीपन से, मुखौटों से उस के मन में बड़ी हलचल होती कि लोग ऊपर की झिल्लियाँ उतार कर बात क्यों नहीं करते? जैसे हैं वैसे बनकर जियें और विश्वास के साथ जियें, तो इन के हितों को क्या क्षति पहुंचेगी? क्या कभी, किसी भी क्षण ये अपने छल के साक्षी नहीं हो सकते? उस की प्रताड़ना नही सहते।''[5]

एक तरफ परिवार को पालने का दायित्व और दूसरी तरफ विरासत के नाम पर ऋण स्वयं राकेश जी का कथन है कि ''वास्तविकता यह थी कि बाबा के जीवन के अन्तिम दिनों में बाजार में मंदी आ जाने के कारण दुकान पर काफी ऋण चुकाने में चला जाता था।''[6] अपनी दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए राकेश ने बताया कि ऋण चुकाने के लिए मकान भी गिरवी रखना पड़ा फिर भी कर्ज के लेनदेन घर पर वसूली के लिए आ धमकते जिस से घर की कीमती वस्तुओं को उनसे छिपाना पड़ता। ''खुल कर जीने की कामना उस दिन की कील पर टंगी रहती थी जिस दिन निहाल सिंह का कर्जा उतरेगा।''[7]

बालक अपने अन्दर जिजीविषा जगा आगे बढ़ना चाहता था। किन्तु किसी प्रकार की अनिवार्यता के आगे झुक कर नहीं वह अपने मन और जीवन के लिए स्वयं मार्ग निर्धारित करना चाहता था जो उसे स्वीकार्य हो। 19 साल की उम्र में अतिवादिता, अस्थिरता और आक्रोश के रास्ते पर बढ़ना वह विद्रोही बन गया था।

मित्रों में से जब किसी ने मजाक में ही कह दिया कि वह एक अभिशापित व्यक्ति है, उसके लिए जिन्दगी में कोई रास्ता नहीं है तो इसी मनः स्थिति में उस ने रास्ता ढूँढा, बनाया और चुना वह रास्ता था प्रवाहमान स्रोत का, स्वतन्त्र लेखन का, ईमानदार आत्माभिव्यक्ति का, जीवन की सच्ची वास्तविकता की तलाश का और हिन्दी लेखन की गरिमा–वर्धन लेखन का। राकेश के अपने शब्दों में ''मैं एक असम्भव व्यक्ति हूँ उस के साथ में यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं बहुत ईमानदार आदमी भी हूँ''[8] उन की यह ईमानदारी ही वास्तव में उन की घुटन–टूटन और रितायत का मुख्य कारण रही। यह भी कहा जा सकता है कि यदि मदन–मोहन गुगुलानी के पिता की असामयिक मृत्यु न हुई होती और इस हानि का उस किशोर मन पर इतना संवेदनात्मक प्रभाव तथा भारी–भरकम उत्तरदायित्व न पड़ा होता तो सम्भवतः हिन्दी को 'मोहन राकेश' न मिलता।

इस उम्र में एक ओर जिम्मेंदारियों का बोझ, दूसरी और अत्यन्त संवेदनशील विद्रोही मन। एक तरफ व्यवस्था की मांग, दूसरी तरफ स्वतन्त्र जीवन जीने तथा अपना निर्माण करने की ललक। दोनों के बीच ग्रीष्म की धुल के गुब्बारे उठाता –सा जीवन का यथार्थ। आर्थिक विपन्नता और स्वाभाविक की टकराहट लेखक को जीवन के ऊषाकाल में ही जीवन के विविध संघर्षों से जूझना पड़ा। यही द्वन्द्व उन के सारे साहित्य में प्रतिफलित हुआ है। लेखन उन की अन्तः प्रवृति थी। राकेश ने स्वयं स्वीकार किया है कि ''मेरे लेखन में रूचि उत्पन्न होने का सब से अधिक श्रेय मेरे पिता श्री को है जिन के कारण घर में साहित्यिक माहौल बना रहता था''[9] यह आन्तरिक आवश्यकता कहीं स्वयं को सम्प्रेषित करने की बलबती इच्छा से प्रेरित है तो कहीं परिवेशगत विरूपता को गहराई से समझने और उस से जूझने की जिजीविषा के रूप में व्यक्त हुई है। लेखक की भाषा में–

''मेरे लिए अनुभूति का सीधा सम्बन्ध मेरे यथार्थ से है और मेरा समय और परिवेश – व्यक्ति से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक पूरा परिवेश में इन में से एक से कट कर शेष से जुड़ा नहीं रह सकता अपने पास के सन्दर्भो से आँख हटा कर दूर के सन्दर्भो में नहीं जी सकता।''

वे अपने नजदीकी, हृदय के पास अनुभव किए जाने वाले मानवीय सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए लिखते रहे। उन के साहित्य में जिन्दगी का जो रूप अंकित है वह काल्पनिक न होकर उन के अनुभूत सत्य का आईना मात्र है। साहित्य के माध्यम से अपनी कोई विशिष्ट इमेंज बनाने के लिए उन्होंने कभी समझौता नहीं किया तथा अपने साहित्य को भोगे हुए यथार्थ के निकट ही रखा। उन की लिखी डायरी, उन की गतिविधियों, विचारों, सम्पर्कों एवम् प्रतिक्रियाओं का खुला चिट्ठा है जिस में राकेश सम्पूर्णतः विशिष्ट एवं संशलिष्ट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोहन राकेश व्यक्तित्व एवं कृतित्वः डा. ललिता अरोड़ा – पृ. 15
2. पुष्पा बंसलः एक झिलमिलता हीरा पृ. 4
3. मोहन राकेशः सारिका : फरवरी 1973, गर्दिश के दिन : पृष्ठ 21
4. मोहन राकेश : राकेश की डायरी 16
5. परिवो : चीटियों की पक्तियाँ : जमीन से कागज तक पृष्ठ 16
6. आत्मकथा मोहन राकेश, सारिका, मार्च 73ए पृ. 75
7. मोहन राकेश : आइने के सामने, पृ. 189
8. चन्द सतरें और : अनिता राकेश पृ. 58
9. मोहन राकेश : साहित्य और संस्कृतिः राधा कृष्ण प्रकाश पृ. 125

***

मानव अधिकार : अवधारणात्मक आयाम

शैफाली जैन
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
एस.एस.जैन. सुबोध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

मनुष्य को परमात्मा एवं प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है। इस श्रेष्ठता की वजह मानव–मात्र में सन्निहित उसकी अद्‌भुत क्षमताएँ हैं। इन क्षमताओं के विकास के लिए सभी राज्य अपने नागरिकों को सुविधाएँ प्रदान करते हैं और उनकी क्षमताओं को विकसित करने के लिए कुछ विशेष परिस्थितियाँ, एवं हक प्रदान करते हैं। मनुष्य को विशेष आदर–सम्मान एवं प्रतिभा का भी अधिकारी माना जाता है। हर समाज में एवं प्रत्येक सभ्यता के दौर में, स्थानीय आवश्यकताओं एवं सामाजिक स्थितियों, संस्कारों तथा जीवनमूल्यों के अनुरूप, मानव मात्र को विशिष्ट स्थितियाँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध होती रही हैं। इन सुविधाओं को अधिकार, बुनियादी अधिकार, मौलिक अधिकार और अब मानव–अधिकार के रूप में परिभाषित एवं चिन्हित किया गया हैं।

मानव–अधिकारों की अवधारणा देश, काल, परिस्थिति, राजनैतिक दर्शन एवं सामाजिकता–सापेक्ष होती है। अतः मानवाधिकारों की सार्वभौमिक एवं संपूर्ण परिभाषा अथवा व्याख्या संभव नहीं है। अधिकार मानवीय जीवन की वे व्यवस्थाएँ हैं जिनको सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताएँ प्राप्त होती हैं और जिनके प्रयोग के द्वारा व्यक्ति अपने जीवन में श्रेष्ठत्व को प्राप्त कर सकता है। अधिकारों का उपयोग करते हुए व्यक्ति अपना वांछित नैतिक एवं भौतिक विकास करता है।

(क) सामान्य विशेषताएँ

अधिकारों, विशेषकर मानव–अधिकारों की कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जिनके कारण ये अधिकार कारगर एवं अर्थपूर्ण बनते हैं। मानव–अधिकारों की सामान्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं:–

1 **वैयक्तिक या सामूहिक मांग** – मानव–अधिकार एक प्रकार की वैयक्तिक या सामूहिक मांग हैं, जो समाज से की जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छाएँ या मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति के लिए विशेष परिस्थितियों व बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। नागरिक एवं व्यक्ति–समूह राज्य या समाज से उन परिस्थितियों की मांग करते हैं। यह मांग ही प्रकारान्तर से मानव–अधिकार का स्वरूप ग्रहण करती है।

2 **समाज एवं राज्य की मान्यता** – अधिकार का अस्तित्व समाज में ही सम्भव है। अधिकार के लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक है। सामाजिक स्वीकृति के अभाव में व्यक्ति जिन शक्तियों का उपयोग करता है वे उसके अधिकार न होकर प्राकृतिक शक्तियाँ हैं जिनका उपयोग वह मात्र अपने ही स्वार्थों की पूर्ति के लिए स्वेच्छापूर्वक करता है। ऐसी दशा में जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है। अधिकार तो राज्य द्वारा

नागरिकों को प्रदान की गयी विशेष स्थिति और सुविधा का नाम है। इस सुविधा की आवश्यकता तथा उपयोग समाज में ही सम्भव है। शून्य में व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते।

3 **राज्य का संरक्षण** – मानव–अधिकार का एक आवश्यक लक्षण यह है कि उसकी रक्षा का दायित्व राज्य अपने ऊपर लेता है और इस सम्बन्ध में राज्य आवश्यक व्यवस्था करता है। अर्थात् मानव–अधिकारों को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता है। बिना इसके अधिकारों के रक्षण की परिकल्पना संभव नहीं हो सकती।

4 **कल्याणकारी स्वरूप** – मानव–अधिकारों का सम्बन्ध आवश्यक रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास से होता है। इस कारण अधिकार के रूप में केवल वे ही स्वतंत्रताएँ और सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं जो व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक या सहायक हों। व्यक्ति को कभी भी वे अधिकार नहीं मिल सकते हैं जो व्यक्ति के विकास में बाधक हों। इसी कारण मद्यपान, जुआ खेलना या आत्महत्या मानव–अधिकार के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

5 **समानता की बुनियाद** – भेदभाव रहित समता, व्यापक एवं बुनियादी अधिकार का सेतुबन्ध है। अधिकार का उपयोग किसी एक वर्ग तक ही सीमित होना उचित नहीं है। वह समाज के सभी व्यक्तियों को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। जब अधिकार किसी एक वर्ग या जाति के लिए सुरक्षित होता है, तब वह अधिकार न होकर कुछ लोगों का विशेषाधिकार हो जाता है। अधिकार का उपभोग बिना जातिगत, वर्गगत भेदभाव के सभी के लिए होना आवश्यक हैं।

6 **अधिकार–कर्तव्यः** – अधिकार तथा कर्तव्य परस्पर आश्रित हैं। प्रत्येक अधिकार में कर्तव्य की भावना निहित है। जिस प्रकार समाज के बाहर अधिकार का अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार कर्तव्य के बिना अधिकारों का उपभोग भी संभव नहीं। जो एक के लिए अधिकार होता है, वहीदूसरे के लिए कर्तव्य होता है। अधिकार और कर्तव्य वास्तव में एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

(ख) मानव–अधिकार : विशिष्ट संदर्भ

मानव–अधिकारों की इन सामान्य विशेषताओं के कारण ही वे सामान्य अधिकारों एवं विशिष्ट अधिकारों के साथ अपनी एकात्मकता स्थापित किए हुए हैं। उपर्युक्त सामान्य विशेषताओं के अलावा मानव–अधकारों की अपनी विशिष्ट पहचान भी है, जिसे निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है :–

(क) **सार्वभौमिकता** – मानव–अधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक एवं सार्वलौकिक है। विश्व के सभी समाज एवं मुल्क मानव–अधिकारों को स्वीकार करते हैं। उनका सम्मान करते हैं तथा उन्हें लागू करते हैं। मानव–अधिकार भौगोलिक सीमाओं में बंधे हुए नहीं हैं। सभी राष्ट्र बिना किसी भेदभाव के इन्हें लागू करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1948 में सार्वभौमिक

मानव–अधिकारों की घोषणा की, जिसके अन्तर्गत मानव–मात्र के लिए मानव–अधिकारों को लागू किए जाने के संकल्प की अभिव्यक्ति की गई है। विश्व के करीब सभी देश इस घोषणा को स्वीकार करते हैं एवं सम्मान करते हैं जिसकी वजह से इस घोषणा एवं मानव–अधिकारों का महत्व सार्वलौकिक होकर इन अधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक बन गई है।

(ख) **अविभक्तता** – मानव–अधिकार अविभक्त प्रकृति के होते हैं। इन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्ति एवं वर्ग–समूह को ये मिले हुऐ होते हैं उनके साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुऐ रहते हैं। इन्हें उन नागरिकों से हटाकर अन्य को बांटा नहीं जा सकता है। किसी के आजादी के अधिकार को आधा–आधा करके दो नागरिकों में विभक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि मानव–अधिकार अपने आप में सम्पूर्ण, मुकम्मल एवं अभिन्न रूप से उसी नागरिक को उपलब्ध रहते हैं जिसको ये मिले हुऐ हैं।

(ग) **अन्योन्याश्रितता एवं अहस्तान्तरणीयता** – मानव–अधिकार अन्योन्याश्रित होते हैं। वे एक तरफ कर्तव्यों के सांगोपांग निर्वाह पर निर्भर करते हैं, वहीं दूसरी तरफ विविध प्रकार के मानव–अधिकार एक दूसरे पर भी आश्रित रहते हैं। मानव–अधिार अहस्तान्तरणीय होते हैं। कोई भी नागरिक अपने अधिकार को किसी और को हस्तान्तरित नहीं कर सकता। कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता, समानता या व्यवसाय के अधिकार को यह कह कर किसी और को नहीं दिलवा सकता कि मेरे हिस्से का यह अधिकार पूरी तौर पर या आंशिक तौर पर अमुक व्यक्ति को दे दिया जाय।

(घ) **पवित्रता** – मानव–अधिकार पवित्र होते हैं। उन्हें दूषित करने पर या उनका अतिक्रमण करने पर, अवहेलना करने वाला व्यक्ति दोषी माना जाता है। जिस तरह से पवित्र स्थानों एवं आदरणीय व्यक्तियों की मर्यादा एवं सम्मान की स्थितियाँ होती है, वैसी ही मान–मर्यादा एवं सम्मान की स्थिति मानव–अधिकारों को प्राप्त हैं।

(च) **क्रियान्वियतता** – मानव–अधिकारों का स्वरूप क्रियान्वयनकारी होता है। जो व्यक्ति मानव–अधिकारों की अवहेलना करता है, उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही अमल में लाई जा सकती है। पुलिस जैसे अनेक कानून क्रियान्वयन–अभिकरण राज्य द्वारा अस्तित्व में लाए जाते हैं, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि मानव–अधिकारों की अवहेलना नहीं हो और यदि कोई इनकी अवहेलना करता है तो दोषी व्यक्ति के खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जाकर उसे दण्डित करवाया जाए।

(छ) **लोक–कल्याणोन्मुखी** – मानव–अधिकार अपने मूलस्वरूप में लोक – कल्याणकारी एवं सर्वजन हिताय के मूलमंत्र से प्रेरित रहते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य जन–जन का हित संवर्धन एवं सार्वजनिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है। समाज के सभी वर्गों का हित हो और जहां उन्हें कल्याणकारी स्थितियाँ मिलें, उसी दिशा में मानव–अधिकारों की गति बनी रहती हैं।

(ज) **मानवतावादी** – उदारता, करूणा, स्नेह, सहयोग एवं भाईचारा जैसी मूलभूत मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित होने के कारण मानव–अधिकारों को मूलतः मानवतावादी माना जाता हैं। मानव–मात्र को मान–सम्मान, प्रतिष्ठा एवं आदर का अधिकारी मानने की मूल भावना से मानवतावादी विचारधारा प्रेरित रहती है। मनुष्य से बड़ा कुछ नहीं है। मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है अतः उसका स्थान उच्च एवं सुविधाएँ श्रेष्ठ होनी चाहिये।

(झ) **प्रगतिशीलता** – मानव–अधिकार प्रगतिशील जीवन–मूल्यों पर आधारित होते हैं और प्रजातन्त्र, समानता, भाईचारा स्वतन्त्रता तथा समृद्धि और विकास के बुनियादी लक्ष्यों से प्रेरित एवं संचालित होने के कारण उनको मूलरूप से प्रगतिशील विचारधारा का संवाहक माना जाता है।

इस प्रकार मानव–अधिकार व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की गरिमा एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एवं भाईचारे के लिए अत्यावश्यक स्थितियाँ हैं। मनुष्य–मात्र के सर्वांगीण विकास के लिए तथा उसके उत्थान एवं सफलता के लिए मानव–अधिकार ठोस बुनियाद का काम करते हैं। मनुष्य को धरती की प्रथम एवं अन्तिम सच्चाई मानकर उसे सर्वोच्च मानने की अवधारणा को मानव – अधिकारों के प्रचलन, संवर्धन एवं संरक्षण से ही सुनिश्चित किया जा सकता है। मानव–अधिकारों का आविर्भाव मूलतः स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समग्र विकास और आत्म–सम्मान प्राप्त करने के लिये होता है। मानवाधिकारों की भावना का मुख्य तत्व विश्व बन्धुत्व की भावना पर आधारित है। इसका संबंध मनुष्यों के व्यक्तित्व एवं विकास से जुड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिलीप जाखड़, ''मानवाधिकार'', यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि. जयपुर।
2. बी.आर. कृष्ण अय्यर ''ह्यूमन राइट्स'', वेदपाल लॉ हाउस, इन्दौर।
3. जय जयराम उपाध्याय ''मानव अधिकार'' सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
4. डा. बाबा साहब अम्बेडकर ''राइटिंग्स एंड स्पीचेज'', वाल्यूम – 2।

***

'परीक्षा गुरू' में उद्धृत उपदेशात्मकता के विदेशी प्रसंग व उसकी प्रासंगिकता

डॉ. एच. एल. धीमान
एसोसिएट प्रोफेसर
चन्द्रधर गुलेरी राजकीय महाविद्यालय, हरिपुर गुलेर
कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

'परीक्षा गुरू' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। औपन्यासिक परम्परा जो पाश्चात्य साहित्य से उभरकर बंगला से होते हुए हिन्दी में आई, जिसे स्वयं 'परीक्षा गुरू' के लेखक श्रीनिवास दास ने 'नई चाल' की विधा कहा था, वास्तव में पाश्चात्य विधाओं की हिन्दी में अनूदित परम्परा की देन है। ये बात सच है कि औपन्यासिक तत्वों से युक्त उपन्यास को वास्तविक रूप उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के अवतरण से मिला, परन्तु गद्य के प्रति बढ़ती चाह, खड़ीबोली के उदयन, अनुकरण की होड़ और साहित्य की नई विधाओं के प्रति तत्कालीन लेखकों का बढ़ता रुझान, उन्नीसंवी शती के अन्तकाल में उपन्यास व अन्य विद्याओं के बीज बो गया था।

सन् 1882 में रचित श्रीनिवास की रचना 'परीक्षा गुरु' जिसे सभी विद्वान एकमत से हिन्दी भाषा में लिखित पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं, में किस्सागोई से सम्पृक्त उपदेशात्मक का चित्रण है। उपन्यास की उपदेशात्मकता का आधार अधिकांशतः भारतीय वांङ्मय के महाभारत, रामायण, हितोपदेश, मनुस्मृति व पुराण हैं वहीं उपदेशात्मकता के अधिकतर उद्धरण शेक्सपियर, वेकन, मिल्टन, विलियम कूपर की रचनाओं से भी लिए हैं, साथ ही विदेशी शासकों, राजाओं, वैज्ञानिकों व अन्य महत्वपूर्ण हस्तियों के अनुभवों व बातों, किस्सों को भी उद्धृत कर अपनी औपन्यासिक उपदेशात्मकता में सम्मिलित किया है। संस्कृत की इस नीति प्रधान परम्परा का अनुसरण करते हुए उपन्यासकार ने उपन्यास के मूल स्वर 'में जो बात सौ बार समझाने में समझ में नहीं आती वह एक बार की परीक्षा में भली–भान्ति मन में बैठ जाती है' अंकित कर स्पष्ट कर दिया है और इसी बात से लोग परीक्षा को गुरु मानते हैं। उपन्यास के मुख्य पात्र मदन मोहन के लिए ये परीक्षा उपन्यास के इकतालीस प्रकरणों से गुजर कर व उपन्यास के अन्य पात्र ब्रजकिशोर की बुद्धिमानी से सच्चा सुख 'परीक्षा गुरु' के कारण प्रामाणिक भाव से रहने में है, मदन मोहन को घर बैठे मिल जाता है। सुविधा सम्पन्न व रहीस मदनमोहन का चरित्र, स्वभाव, संस्कृति व संस्कार, संगति, विवेकहीनता आदि के कारण किस तरह पतित हो जाता है और उसे जेल तक जाना पड़ता है परन्तु पत्नी व मित्र के त्याग व मित्र के पुरूषार्थ के कारण इस विपत्ति से छुटकारा मिलता है, उपन्यास के विभिन्न प्रकरणों में चित्रित उपदेशों, आदर्शों व जीवन के शाश्वत मूल्यों जो वास्तव में व्यक्ति में त्याग व पुरूषार्थ का निर्माण करते हैं, एक बिगड़ैल पुरूष को लाइन पर ले आते हैं। उपदेशों से निर्मित जीवन मूल्य प्रत्येक के जीवन की दिशा को निर्धारित कर उसकी दशा का निर्माण करते हैं।

भारतीय संस्कृति में रचे बसे ये उपदेश वक्त के साथ भले नई पीढ़ी की नजर में अप्रांसगिक हो रहे हैं, मगर जीवन की सत्यता की शाश्वतता कहीं न कहीं उन्हीं पर आकर ठहर जाती है और इन्हीं के उपार्जन से व्यक्ति को सुकून की राह मिलती है। आचार्य धर्म पाल मैनी ने ठीक ही कहा है "किसी भी समाज की धारणाएं, मान्यताएँ, आदर्श और उच्चतर आकांक्षाएं ही वहां के जीवन मूल्यों का सृजन करती हैं। यद्यपि इन जीवन मूल्यों की आधार भूमि में प्रायः परिवर्तन नहीं होता परन्तु उनके व्यवहृत रूप में सिर्फ परिस्थितिजन्य परिवर्तन होता रहा है"[1]। इसलिए तत्कालीन मूल्यपरक उपदेशात्मकता आज के सन्दर्भ में भी उतनी ही प्रांसगिक है क्योंकि उसमें वर्णित भाव शाश्वत, तथ्यपरक व अमिट है। अपनी किस्सागोई प्रवृति में जिन विदेशी राजाओं, विद्वानों व अन्य महाजनों के प्रसंगों का वर्णन 'परीक्षा गुरु' उपन्यास में चित्रित है, वे सब प्रंसग मानव को उसके कर्तव्यपरायण, मेहनती होने, त्यागी बनने, पुरूषार्थ करने, प्रीतिकारी होने, सुख दुःख के भाव में सम होने, कृतज्ञशील व क्षमा भावी बनने, विषयास्क्तता के असर, भले बुरे की पहचान, संगति के असर व्यवहार कुशलता आदि के सन्देश देते हैं। वे सत्य की कसौटी पर जितने खरे उतरते हैं, उतनी ही वैश्विक प्रवंचनाओं के निवारण में सहायक हो सकते हैं। ये वे मूल्य भाव हो सकते हैं जो न केवल वैश्विक स्तर पर माननीय है अपितु ये सब ही भारतीय संस्कृति का मूलाधार भी रहे हैं और इनकी शाश्वतता कभी समाप्त ही नहीं हो सकती।

उपन्यास के धनाढय पात्र मदनमोहन को आधार बनाकर अमीरों की आलसी वृति पर चोट करते है। लिडिया के बादशाह कारुन को उद्धृत करते हुए उन्होंने साइरस को दास बनाने का ढंग बताया है कि "हमको दास किस लिए बनाते हो। हमारे नाश करने का सीधा उपाय यह है कि हमारे शस्त्र ले लो, हमें उत्तमोत्तम वस्त्र भूषण पहनने दो, नाच रंग देखने दो, श्रृंगार रस का अनुभव करने दो, फिर थोड़े दिनों में देखेगें कि हमारे शूरवीर अबला बन जाएंगे और सर्वथा तुम से युद्ध न कर सकेंगे"।[2] लेखक ने दूसरों की परख और परीक्षा के बिना यकायक विश्वास नहीं कर लेने की सलाह दी है। वे कहते हैं कि दूसरों की बातों में आकर अपना कर्तव्य भूल जाना भी उचित नहीं है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लेखक "केलीप्स नामी एथीनियन एवं साइराक्यूस के बादशाह डिओन की मित्रता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए केलीप्स द्वारा साइराक्यूस पर चढ़ाई की और डिओन को महल में ही मरवा डालने का वृत्तान्त बताते है। उनके अनुसार दूसरों की बातों में आकर अपना कर्तव्य भूलना बढ़ी भूल की बात है"।[3]

एक और विदेशी प्रंसग में लेखक ने आदमी के भले बुरे की परख का उल्लेख किया है। आदमी कितना भला है या कितना बुरा है। उसके अच्छे बुरे होने की वृति समय आने पर उसके व्यवहार से अपने आप प्रकट हो जाती है, "पाईसिस्ट्रेट्रेस नामी एथीनियन का नाम इतिहास में इसी कारण चमक रहा है। वह उदार होने पर फिजूल खर्च न था और किसी के साथ उपकार कर प्रत्युतकार नहीं चाहता था बल्कि अपनी मानवरी की चाह भी नहीं रखता था। वह किसी दरिद्र की उदार हृदय से सहायता करके उसके दुःख दूर करने के उपाय करता, पर कभी किसी मनष्य को उसकी आवश्यकता से अधिक देकर आलसी और निरुद्यमी नहीं होने देता था"।[4] अतः किसी भी मनुष्य की प्रवृति का प्रकाश उसके व्यवहार से समक्ष आता है। वहीं से उसके खरे खोटे की पहचान होती है। सज्जनता एक महान गुण है, सज्जन व्यक्ति

नेकी में विश्वास रखता है और नेकी ही उसका धन होता है, नेकी के गुण किसी भी लालच से नहीं मरते। सज्जनता के भाव को प्रतिपादित करते हुए लेखक मेसीडोन के बादशाह के रूसी सरदार फेब्रीशियस को दी गई शाबाशी से उद्धृत करता है कि "मैं जानता हूँ कि तुम जैसा वीर, गुणवान, स्वतन्त्र और सच्चा मनुष्य रूस के राज भर में दूसरा नहीं है इसलिए मैं तुम्हें तुम्हारी पदवी के लायक धनवान बनाना चाहता हूँ ,...... फेब्रीशियस ने उत्तर दिया, निःसन्देह मैं धनवान नहीं हूँ। जो मेरे पास है वो मेरी जरुरत के लिये बहुत है और जरुरत से ज्यादा लेकर मुझ को क्या करना है? मेरी इज्जत और धनवानों से बढ़कर है, मेरी नेकी मेरा धन है, दौलत की अपेक्षा मुझ को अपनी इज्जत प्यारी है इसलिए तुम अपनी दौलत को अपने पास रखो और मेरी इज्जत मेरे पास रहने दो"।[5] नेक चलन व नेक सोच के समक्ष राजा भी असफल हो जाते हैं, तुम्हारी जमीर में बड़ी ताकत होती है, यही ताकत अमूल्य होती है, कोई बादशाह भी इसे खरीद नहीं सकता। सब नेकी भूल लूट–खसूट की राह पर चल पड़े हैं जो मानवीय व राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में बाधा है। लेखक की नजर में बुरा कर्म करने वालों की कभी मदद नहीं करनी चाहिए, उन्हें अपने किए का फल मिलने देना चाहिए। इसे स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते हैं "जब रशिया का शंहशाह पीटर बीमार हो गया, ज्वर ने उनकी स्थिति बिगाड़ दी, उसके वजीर द्वारा उसकी ईश्वरीय इबादत के एवज में अपराधियों को छोड़ देने का हुक्म चाहा तो पीटर ने निर्बल आवाज में कहा क्या तुम यह समझते हो कि इन अभागों को क्षमा करने और इन्साफ की राह में कॉंटें बोने से कोई अच्छा काम करुंगा? और जो अभागे माया जाल में फंस कर सर्वशक्तिमान ईश्वर को ही भूल गए हैं, मेरे फायदे के लिए ईश्वर उनकी प्रार्थना अस्वीकार करेगा?[6] सच्ची प्रेम भावना का प्रकटीकरण लेखक ने तुलसीदास के इन शब्दों "धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिये चारी" के आलोक में किया। स्वार्थपरता व आत्म केन्द्रित भावना ने सच्ची प्रीति को विलुप्त कर दिया है। प्रीति शाश्वत मूल्य है, बहुतों ने इस प्रीतिभाव का निर्वहन किया है और बहुत से आज भी करते हैं। इस प्रीतिभाव को उद्धृत करते हुए लेखक ने लिखा है कि पति के लिए अपनी प्रीति भावना के चलते "इंग्लैण्ड के बादशाह पहले जेम्स की बेटी जो इलेक्टर पेलेटीन के साथ ब्याही थी। उसने अपने पति के बोहोमिया का बादशाह बनाने की उमंग में इनकी तरह अपना सब जेवर खो दिया। इसे अन्त में उसको अपने निर्वाह के लिए भेष बदल कर भीख मांगनी पड़ी थी"।[7] दूसरे प्रसंग में नारमण्डी के अमीर जादे रोवर्ट की स्त्री समबिल्ला की पति के प्रति सच्ची प्रीति का उल्लेख किया हैं "रोबर्ट के शरीर में एक जहरी तीर लगने से ऐसा घाव हो गया था कि डॉक्टरों के विचार में जब तक कोई मनुष्य उसका जहर न चूसे रोबर्ट के प्राण बचने की कोई आशा न थी और जहर चूसने से चूसने वाले का प्राण भय था। रोबर्ट ने अपनी प्राण रक्षा के लिए एक मनुष्य के प्राण लेने सवर्था अंगीकार न किये, परन्तु उसकी पतिव्रता स्त्री ने उसके सोते में उसके घाव का विश चूसकर उस पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये"।[8]

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रीतिवश दूसरे पर अपने जान न्यौछावर करने के किस्से बहुत कम मिलते हैं, बल्कि जान से मारने के किस्सों से समाचार पत्र भरे रहते हैं। हमारे जीवन मूल्यों का कितना क्षरण हो चुका है। भौतिक वृति व स्वार्थान्धता ने मानवीय रिश्तों व हमारी जीवन शैली को तार–तार कर दिया है। 'परीक्षा गुरु' उपन्यास इन किस्सागोई प्रसंगो से भरा पड़ा है, क्या देशी, क्या विदेशी 'सीख' जो

जीवन की कसौटी पर खरी उतरती हैं, उपन्यास में उनकी भरमार है। आज के भौतिकवादी युग में जिस तरह मानवता कराह रही है, शायद उसकी चीखें रुक जाएं, मगर ये सब स्वयं को परीक्षा की कसौटियों में झोंकने और जीवन मूल्यों के निर्वहन से ही संभव होगा।

ऊपर्युक्त विवेचन के आलोक में भारतीय वाङ्मय में उद्धृत ये मूल्य शाश्वत व प्रांसगिक हैं। जीवन में सूकून की राह शायद इन्हीं मूल्यों व उपदेशों के आवष्ण व आभरण से होकर निकलती है, जिनका पुनर्मूल्यांकन समय की नज़ाकत है अन्यथा पतित से अतिपतित हो रहे समाज को कानून का डण्डा कब तक सुधार सकेगा, ऐसा असम्भव ही दीखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 ‘भारतीय जीवन मूल्य’ भारतीय संस्कृति संस्थान चण्डीगढ़ पृ0–3

2 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–42

3 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–43

4 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–48

5 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–75

6 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–75

7 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–107

8 परीक्षा गुरु श्री निवास दास पृ0–26

***

भारतीय जनजातियों की राजनीतिक एवम् संवैधानिक व्यवस्था

अशोक कुमार छाछिया
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली

राजनीतिक संगठन की दृष्टि से भारतीय जनजातियों में सांस्कृतिक व आर्थिक विभिन्नताओं में कारण प्रथम मॉडल दृष्टिगोचर होते है। एक और दक्षिण भारत की घुमक्कड जनजातियॉ कादर, इरूला तथा चैचु जैसी जनजातियॉ है जो वन उत्पादों के संग्रहण तथा आरवेट से अपना जीवन यापन करते है। तथा तकनीकी विकास की दृष्टि से इनका जीवन स्तर पर्याप्त निम्न है। दूसरी ओर मेघालय की खासी व गारों पहाडियों की तथा अरूणाचल प्रदेश में अवतानिस पहाडी श्रृंखला की जनजातियॉ है जो अत्यधिक विकसित कृषि तथा फल सब्जी विज्ञान (होर्टी कल्चर) की उपलब्धि के कारण पर्याप्त सुविधाजनक जीवन व्यतीत कर रही है। भारतीय जनजातियों की राजनीतिक व्यवस्था को उनके हिन्दुओं तथा ईसाइयों के साथ संपर्क के आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है। एक तरफ मध्यप्रदेश के छोटा नागपुर क्षेत्र की हिन्दु संस्कृति से प्रभावित जनजातियॉ है वहीं दूसरी ओर मेधालय, असम, नागालैण्ड तथा मिजोरम की ईसाई धर्म से पूर्णतः प्रभावित जनजातियॉ है।[1] इस प्रकार भारत में जनजातियॉ एक सजातीय समूह नहीं है अपितु सामाजिक,आर्थिक तथा सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण इन जनजातियों के राजनीतिक संगठनों में भी अत्यधिक भिन्नताऐं व्याप्त हैं। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में खासी, गारो, लुशाई, जैतिया, मिजो, अपालानी तथा विभिन्न प्रकार की नागा जनजातियॉ है।

खासी जनजाति :– खासी जनजाति में नेतृत्व मुखिया की बहन के बडें लडके को मिलता है।[2] यदि वंशानुक्रमण में पुरूष उत्तराधिकारी नहीं हो तो बहन को भी नेतृत्व उत्तराधिकारी में मिलता है। इस जनजाति के सारे निर्णय जनजाति के सभी वयस्क सदस्यों की सहमति से लिये जाते है। खासी मुखिया को 'सियाम' कहते हैं।

लुशाई जनजाति :– लुशाई जनजाति में नेतृत्व पर्याप्त प्रजातंत्रीय होता है क्योकि कोई भी निर्णय लेने में उसे जनजाति में व्याप्त विचार व सहमति का ध्यान रखना होता है।

मिकिर जनजाति :– स्टीफन फुच ने (1973) मिकिर जनजाति सम्बन्धी अपने अध्ययन में बताया कि इस जनजाति के गाँवों में प्रशासनिक संगठन त्रिस्तीय होता है। गॉव में निम्नतम स्तर का अधिकारी गाँव का प्रभावशाली वरिष्ठ सदस्य होता है इसे अचोम असार कहते है तथा इसका क्षेत्राधिकार गाँव की सीमाओं तक ही होता है। इसकी नियुक्ति इससे वरिष्ठ अधिकारी हेब के द्वारा की जाती है जो गॉव का सम्पूर्ण अधिकारी होता है। हेब की नियुक्ति पिनपो के द्वारा की जाती है।

नागा जनजाति :– अधिकांश नागा जनजातियों को हिंसक तथा युद्वप्रिय माना जाता है। परन्तु निरन्तर संघर्ष तथा अराजकता के बावजूद नागाओं में राजनीतिक व्यस्था के लक्षण पाये जाते थे जैसे –कोनयक

नागाओं का मुखिया कई गांवो पर आधिपत्य रखता था। अगामी नागाओं में मूल इकाई सम्पूर्णतया गांव न होकर जनसंख्या का ऐसा भाग माना जाता था जो एक ही पूर्वज का उत्तराधिकारी माना जाता था तथा ये लोग आपस में विवाह नहीं करते थे।[3]

गारो जनजाति :– गारो जनजाति में गांव स्वायत्तशासी इकाई के रूप में कार्य करता है। इसका मुखिया "नोक्या" कहलाता है जो गांव की व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है नोक्या के वंशानुगत आधार पर बनने के कारण से ही उसे समाज में प्रतिष्ठा मिलती है क्योंकि समाज में उसके परिवार की प्रतिष्ठा होती है। यदपि गारोजनजाति में नोक्या की स्थिति मात्र सम्मान तथा प्रतिष्ठा की होती है फिर भी इस प्रकार एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में राजनीतिक सत्ता का संकेन्द्रण रहता है।[4]

डफला जनजाति :– डफला उत्तर पूर्वी सीमा प्रान्त के पश्चिमी क्षेत्र में सुवनश्री खंड के लगभग आधे हिस्से में निवास करते है। इन लोगों में न तो कोई मुखिया होता है और न ही कोई वरिष्ठ सदस्यों की परिषद विचार विमर्श तथा समझा–बुझा कर सहमति बनाने के कारण बिना हिंसा तथा बल प्रयोग किये ही व्यवस्था व पर्याप्त सामंजस्य बना रहता है।

जनजातियों में कानून व प्रशासन :– बिहार, मध्यप्रदेश तथा उडीसा में जनजातियों की राजनीतिक व्यवस्था में कुछ सामान्य लक्षण परिलक्षित होते है जैसे इन सबमें जनजातीय एकजुटता पायी जाती है। गांव के मुखिया की सहायता के लिए वरिष्ठ सदस्यों की परिषद होती है जिसके निर्णय बहुमत से लिये जाते है तथा वे निर्णय सम्पूर्ण ग्राम को स्वीकार होते है।

कतिपय जनजातियों की राजनीतिक व्यवस्था उल्लेखनीय है[5] –

संथाल जनजाति :– संथाल गांव में मुखिया को मॉझी कहते है जिसकी देखरेख में ही सभी त्यौहार उत्सव तथा विवाह मनाये जाते है। मॉझी की सहायता के लिये गांव के वरिष्ठ सदस्यों की परिषद होती है। उसे गांव में नैतिक तथा आर्थिक सत्ता प्राप्त होती है वह ग्रामीणों से लगान भी वसूल करता है। गांव की व्यवस्था करने के लिए मॉझी के तीन सहायक भी होते है। "परिमानिक" मॉझी का प्रमुख सहायक होता है। मॉझी के सामाजिक कार्यो में सहायता करने के लिए जोग मॉझी_होता जिसका प्रमुख कार्य बिरादरी के लोगों के आचरण पर ध्यान रखना है। जोग मॉझी का भी सहायक होता है जिसे "जोग परमानिक" कहा जाता है। परगनैत भी गाँव का मुखिया होता है।

संथाल जनजाति का सबसे बडा संगठन बंग्लो कहलाता है जो प्रशासनिक दृष्टि से कुछ गांवों को मिलाकर बनाया गया संघ होता है जिसमें दो परिषद होती है। उच्च परिषद को पंचायत कहा जाता है जिसका उच्चस्थ अधिकारी परगैनत होता है तथा गांव के मुखिया इस पंचायत के सदस्य होते है। परिषद की निचली सभा को कुलीद्रुप कहा जाता है। इस सभा में गांव के परिवारों में मुखिया परिवार का प्रतिनिधित्व करते है।[6]

उरांव जनजाति :– सुन्दर वन की उरांव जनजाति में पहले ग्राम पंचायत तथा परहा पंचायत दोनों थी परन्तु धीरे–धीरे परहा पंचायत समाप्त होती जा रही है।[7] परहा पंचायत एक सामाजिक, न्यायिक तथा राजनीतिक संस्था होती थी जो गांवो वालो के मध्य तथा गांवो के मध्य विवाद निपटाने का कार्य करती थी। यह अनेक गांवोसे मिलकर बनती थी इसमें गांव का प्रतिनिधित्व राजमोरल (प्रधान) अथवा मंत्री अथवा पंचायत में किसी अन्य सदस्य द्वारा किया जाता था। ब्रिटिश शासन के दौरान इन पंचायतों में परम्परागत नेताओं को पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी किन्तु बाद में सरकार के हस्तक्षेप के साथ जैसे –जैसे इन पंचायतों से पुलिस तथा राजस्व की शक्तियॉ वापिस ली गई तब से इन पंचायतों का प्रभाव कम होता गया।

डब्ला जन जाति में पंच प्रणाली :– डब्ला जनजाति दक्षिणी गुजरात में फैली हुई है। इन लोगों में भी पंचायत व्यवस्था पर्याप्त सुदृढ व व्यवस्थित पाई जाती है–

1. सबसे निमन स्तर पर ग्राम पंचायत होती है जिसका क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण गांव पर होता है। इसका संविधान, नियम व प्रक्रिया स्वयं गांव वालो द्वारा तय की जाती है।
2. दूसरे स्तर पर की पंचायत होती है जो सम्पूर्ण जनजाति से सम्बंधित समस्याओं तथा आंतरिक विवादों पर विचार करती है।
3. तीसरे स्तर पर पंचायत विभिन्न गांवो में रहने वाले डब्ला जनजाति की होती है। जिसकी शक्ति व अधिकार व्यापक होते है। डब्ला पंचायत में कोई भी निर्णय लेने से पूर्व दोनों पक्षों को सुना जाता है। पंचायत के मुखिया को "पटेल" कहा जाता है।

हातु पंचायत तथा परहा पंचायत उनकी राजनीतिक व्यवस्था के सुदृढ संगठन माने जाते थे।[8]

मुंडा जनजाति के राजनीतिक संगठन :– मुंडा जनजाति में पंचायतो के संगठन पर्याप्त सुदृढ है प्रमुख संगठन निम्न है–

हातु पंचायत :– हातु पंचायत गांव के स्तर के विवादों का निपटारा करती थी। पंचायत में गांव के वरिष्ठ तथा प्रभावशाली लोग सदस्य होते थे। परहा पंचायत में ग्राम पंचायत के विरूद्ध अपील की जा सकती है। जाति से बहिष्कृत व्यक्ति को यही पंचायत वापिस जाति में ले सकती है। किन्ही दो पक्षों में बैर होने पर दोनों पक्षों की तरफ से तीन–तीन पंच लिये जाते है। ये पंच आपस में एक सरपंच अथवा प्रमुख का चुनाव करते है। इस प्रकार यह पंचायत झगडों का निपटारा करती है।

असुर जनजाति :– असुर जनजाति में सम्पूर्ण ग्राम एक राजनीतिक इकाई होता है उसकी अपनी पंचायत होती है जिसमें मुखिया को "महतो" कहा जाता है। अन्य जनजातियों के समान यहॉ भी गांव के बुजुर्ग पंच का कार्य निभाने में सहायता करते है। विवाद को सुलझाने के लिए परम्परागत नियमों का सहारा लिया जाता है पंचो की संख्या कुल मिलाकर पांच होती है। पांच सदस्यों के बगैर पंचायत की बैठक नहीं हो सकती है।

टोडा जनजाति :– इन लोगों में जनजातिय प्रमुख नहीं होता है। कानून व्यवस्था बनाये रखने लिए पांच लोगों की परिषद होती है जिसे नेम कहा जाता है। यह समिति पंचायत के सभी कार्य करती है। नेम का कार्य परस्पर विवाद व झगडे निपटाना, त्यौहार तथा उत्सव का निर्धारण करना ही रह गया है तथा बाकि झगडे आधुनिक न्यायालय में ले जाने लगे है।

खाडिया जनजाति :– बिहार तथा उडीसा की रहने वाली खाडिया जनजाति में मुखिया का पद अत्यन्त महत्व का है। इन लोगों में भी पंचायत के समान परिषद होती है जो कि सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक मामलों पर विचार करती है। परम्परागत नियमों उल्लधंन करने वालों को दण्ड दिया जाता है तथा कभी कभी जाति से भी बहिष्कृत कर दिया जाता है। तथा कभी –कभी सूर्य देवता को बकरे की बलि देने की व्यवस्था की जाती है इसके बाद अपराधी को माफ कर दिया जाता है। संथालों के समान इन लोगों में बहिष्कृत व्यक्ति को वापस अपने समाज में लेने के विधि विधान की पूर्ण व्यवस्था है।

जनजातियों की राजनीतिक संस्थाओं में परिवर्तन :– जनजातियों के बाह्य जगत से संपर्क के परिणामस्वरूप उनकी राजनीतिक चेतना में उत्तरोतर प्रगति हुई है तथा उनकी परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं में भी परिवर्तन आया है। ये जनजातियॉ शुरू से ही अलग नहीं थी बल्कि हाट बाजार की संस्कृति के कारण जनजातियों का संपर्क अन्य कारीगर जातियों जैसे लौहार, खाती, कुम्हार, जुलाहा तथा बास की टोकरी बनाने वालों के साथ होता है इस कारण इन लोगों के विचार तथा संस्थाएँ भी प्रभावित होती थी।

स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक तीव्र हुई तथा इन जनजातियों में परम्परागत नेतृत्व का प्रभाव घटा है। परम्परागत समाज में महत्वपूर्ण निर्णय लेने में तथा राजनीतिक विवादों का निपटारा करने में नेतृत्व का महत्व स्वीकार करना चाहिये। यदि ये नेता परिवर्तन के लिए तत्पर हो जाये तो जनजातियों में राजनीतिक परिवर्तन सरलता से हो सकता है।[9] भारतीय संविधान में अभिव्यक्त समाजवादी समाज की कल्पना को जनजातीय नेताओं ने क्रियान्वित करने में उत्साह नही दिखाया तथा इससे मिलने वाले लाभ से जनसामान्य को वंचित रखा।[10] अशोक मेहता समिति ने पंचायत राज संस्थाओं के अध्ययन के संदर्भ में इस ओर संकेत दिया था कि परम्परागत समाज के प्रभावशाली नेताओं ने कल्याणकारी योजनाओं का लाभ आम व्यक्ति तक नहीं पहुंचने दिया।

स्वतंत्रता के बाद जैसे–जैसे न्यायालय तथा पुलिस का प्रभाव बढा है जनजातीय पंचायतो का प्रभाव कम हुआ है तथा अपने विवाद सुलझाने के लिए अब न्यायालय भी जाने लगे हैं। न्यायालय द्वारा जिसे अपराध माना जाता है ये जनजातीय भी उसे अपराध माने लगी है। इस प्रकार धीरे–धीरे जनजातीय पंचायतो तथा नियमों की पकड से जनजातीय समाज मुक्त होता जा रहा है तथा राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं तथा कानूनों को स्वीकार करने लगा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बील्स तथा हॉइजर – इण्ट्रोडक्शन टू सोश्यल एंथ्रोपोलॉजी,1959, पृ 503
2. नदीम हसनैन – पूर्वोक्त पृ 54
3. एच.के.बारपुजारी – प्राब्लम्स ऑफ दि हिल ट्राइब्स मार्थ ईस्ट फ्रंटियर (यूनाइटेड पब्लिशर्स 1843–72) पृ 8
4. एस सी दुबे – ट्राइबल हरिटेज ऑफ इंडिया में सुरेन्द्र के.गुप्ता का लेख "ट्रेडिशनल एण्ड इमर्जिंग पॉलीटिकल स्टूक्र्स " पृ 166
5. बी.के शुक्ला – दि डब्लाज ऑफ दि सुवनली रीजन, शिलांग (नार्थ ईस्ट फ्रत्यिर एजेंसी) 1969 पृ 88–99
6. पी.सी. विश्वास – संथाल्स ऑफ दि संथाल परगना, 1956 अध्याय 6 पृ 149–154
7. अनिल कुमार दास – दि ओरन्स ऑफ सुन्दरवन 1963 पृ 227
8. तपस करमाकर – " कण्टम्पोरोरी पॉलीटिकल आर्गेनाइजेशन ऑफ दि मुण्डाज इन वैस्ट बंगालः ए स्टटी इन कैन्टन्यूटी एण्ड चैन्ज" ट्राइवल ट्रान्सफोरमेशन इन इंडिया, सम्पादक बुद्वदेव चौधरी (इन्टर इंडिया पब्लिकेशन) 1992 पृ136
9. अल्फ्रेड डिसूजा – सम सोश्यल एण्ड इकोनॉमिक डिटरमिनेट्स ऑफ लीडरशिप इन इंडिया "दि पॉलिटिक्स ऑफ चैन्ज एण्ड लीडरशिप डवलपमेंट (सम्पादक) नई दिल्ली मनोहर 1978
10. रजनी कोठारी – पॉलिटिक्स इन इंडिया "ऑरियन्ट लॉग मैन नई दिल्ली" 1970, पृ 282

***

Volume - II January - March 2012 ISSN 2277-5587

नवोन्मेश के पथ पर हिन्दी सैलानी लेखक

डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी
सहायक प्रोफेसर
गोखले मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

''यात्रा अक्सर एक हसरत से शुरू होती है। खत्म भी वह एक हसरत में ही होती है। प्रायः किसी भी यात्रा में हम जितना कुछ देख पाते हैं उससे कहीं अधिक अनदेखा छोड़ आते हैं। अपने साथ हम जो ले आते हैं वह किसी तेज़ हवा के झोंकों में झूमती वृक्ष की डाल, सिंदूरी या पीली पत्तों की आभा, कहीं से उड़कर कहीं और जा बैठने वाला कोई अचीन्हा पक्षी, किसी चेहरे पर होठों और आंख का कोई खास कोण, अचानक सुनी हुई कोई गीत की कोई लड़ी या आवाज़ का टुकड़ा भर होता है।''[1]

आधुनिक हिंदी यात्रा साहित्य अपनी विधा की गरिमा को बनाए रखते हुए अनेक नूतन परिकल्पनाओं को साथ लेकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है। जीवन और जगत से जुड़कर ही साहित्यिक कृति अपनी सार्थकता के चरम लक्ष्य तक पहुंचती है। समकालीन यायावर साहित्य शिल्पियों ने दूर देशांतरों तक पसरे हुए मानव समाज की विविधताओं व विशिष्टताओं की ज़मीनी पड़ताल करते हुए हिंदी यात्रा साहित्य को वैश्विक आयाम प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। स्थान विशेष के भौगोलिक वातावरण, जलवायु, खान–पान, साज–सज्जा, भाषा–बोली, साहित्य व संस्कृति, जनसंख्या व लोक–कथा, यातायात व टेक्नोलॉजी का विशद चित्रण करते हुए लेखकों ने नवीन व विस्मयकारी तथ्यों का बारीकी से प्रणयन किया है। टेलीविज़न व इंटरनेट की सुविधा से लैस आधुनिक समाज घर बैठे अपनी आंखों से विश्व के हर देश व प्रदेश की झांकी का प्रदर्शन देखता है। फिर यात्रा साहित्य की महत्ता पर प्रश्न–चिन्ह क्यों नहीं लगता? कारण यह है कि यात्रा–लेखक अपनी भाषा की लचक, वर्णन–कौशल व आत्माभिव्यक्ति की सच्चाई के बल पर पाठकों के समक्ष अपनी विश्वसनीयता व रोचकता कायम करता है।

यात्रा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए प्रसिद्ध घुम्मकड़ राहुल सांकृत्यायन कृत 'अथतो घुम्मकड़ जिज्ञासा' नामक निबंध में उद्घृत भोर काफी प्रसिद्ध है–

''सैर कर दुनिया की गाफिल, जिंदगानी फिर कहां?
जिंदगानी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहां?''[2]

हिंदी यात्रा साहित्य ने विश्व पटल पर जलवायु व भौगोलिक परिवर्तनों व विशेषताओं की सम्यक जानकारी पाठक के हाथों में सौंपने का महत दायित्व ग्रहण किया है। भौगोलिक तथ्यों का वर्णन करते समय शर्त यह है कि उसके द्वारा प्रदत्त जलवायु, मौसम व भूगोल से संबंधित जानकारी इतनी विश्वसनीय व स़टीक होनी चाहिए कि उसमें अतिरंजना की बू बिल्कुल भी न आए। जैसे 'सूरज के देश में' यात्रा वृत्तांत में लेखिका रीतारानी पालीवाल ने जापान के फुजी पर्वत की भौगोलिक स्थिति की

जानकारी देते समय उसकी जलवायु का भी विशद वर्णन करते हुए लेखिका ने फुजी पर्वत से जुड़ी जापानियों की भावुकता के द्वारा तरल बनाया है। जापानी फुजी को 'फुजी सान' कहकर संबोधित करते है क्योंकि 'सान' जापानी भाषा में सम्मानसूचक शब्द है और फुजी उनके जीवन में सम्मानित स्थान का अधिकारी है। लेखिका फुजी सान के साथ हिमालय की तुलना करने का साहस भी जुटाती हैं पर इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि हिमालय हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में हमारे साथ शायद उस ढंग से नहीं है, जिस ढंग से फुजी सान जापानियों की ज़िंदगी में मौजूद है।

लेखिका रीना पाण्डेय ने 'यह अंजाना देश' में आर्मेनिया की यात्रा को लिपिबद्ध करते हुए आर्मेनिया के भौगोलिक परिवेश की तथ्यपरक जानकारी अपने पाठकों के हाथों सौंपने का दायित्व निभाया है। 'कौकेसस पर्वत श्रृंखला का यह देश प्राचीन और नवीन का अद्भुत संगम है। प्रागैतिहासिक स्थलों से परिपूर्ण यह देश मध्ययुगीन मोनोस्टरियों से जहां एक ओर भरापूरा है, वहीं, दूसरी ओर, येरेवान में स्थित सोवियत काल के आवासों और कार्यालयों के अत्यधिक नए भवन भी भरे पड़े हैं। [3] प्रत्येक पर्यटन स्थल अपनी ठोस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बल पर विस्मय का कारण बनता है। इतिहास के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने वाला साहित्यकार ऐतिहासिक वर्णन से जुड़ी एकरसता व बोरियत को स्पर्श न करते हुए अपने वर्णन–कौशल के बल पर एक दिलचस्प दुनिया का निर्माण करता है। पाठक ऐतिहासिक जानकारी हासिल करते हुए भी इतिहास के घुमावदार व पेचीदे मसलों से मुक्त रह जाता है। आधुनिक युग की यात्री लेखिका श्रीमती कुसुम खेमानी ने 'लोहे के पर्दे से झांकता मॉस्कों में मॉस्को के इतिहास के हर खरे–खोटे तथ्य का बेबाक खुलासा किया है। क्रेमलीन के रेडस्क्वायर, पीटर द ग्रेट द्वारा सन 1712 में मॉस्को से अपनी राजधानी पीटर्सबर्ग में स्थनांतरित करने की घटना, रूस के आरंभिक ज़ारों तथा पीटर द ग्रेट व कैथरीन द ग्रेट के विजय अभियान, मई 1945 में रूसी सेना के हाथों नेपोलियन की पराजय, 1547 के ज़ार राजाओं के राज्याभिशेक के अवसर पर पहनाए जाने वाले मोनोमैचस कैप अर्थात मुकुट का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है।

'क्रैमलीन की जान है कैथ्रेडिल ऑफ सेंट बसिल द ब्लैसैड, मास्को में इसे 'इतिहास का अजायबघर' का दर्जा प्राप्त है। यह कैथ्रेडिल प्रतीक है रूस की अखंडता का, रूस की विजय का। रूसियों ने इसे तारतारों और मंगोलों की गुलामी के जुए को उतार फेंकने के अवसर पर बनाया था। काज़ान रवानेट, मंगोलों और तारतारों ने रूसियों का चैन छीन रखा था। जब रूसियों ने दुर्धर्श युद्ध कर उन्हें मार भगाया तब एक स्मारक के रूप में इवान द टेरीबल ने इसका निर्माण करवाया। [4] इस प्रकार के वर्णन लेखक के गंभीर अध्ययन की अमिट छाप पाठकों पर डालती है। यात्रा साहित्य साहित्य के आनंद तत्व का समाधान करने के साथ–साथ ज्ञान तत्व की परिपूर्ति भी करता है। इतिहास के कई अनछुए पहलू यायावर साहित्यकार अपने पाठक के सुपुर्द कर देता है।

कुसुम जी ने 'हैदराबाद की कहानी : गोलकोण्डा की ज़ुबानी' नामक लेख में शिल्प की नवीनता को आत्मसात करते हुए गोलकोण्डा की कहानी खुद गोलकोण्डा की ज़ुबानी कहलवाई है। गोलकुण्डा पर मोहम्मद कुली कुतुब भााह, अबुल हसन तानाशाह आदि के शासनकाल की बारीकियां भी

इस लेख में बाकायदा मिलती है। गोलकोण्डा के बहाने लेखिका ने औरंगज़ेब की धार्मिक अहिश्णुता, शिवाजी की वीरता, हैदराबाद की निज़ामशाही के दास्तान भी बयान किए हैं।[5]

लेखिका नूर ज़हीर ने 2008 में प्रकाशित 'सुर्ख कारवां के हमसफर' में पाकिस्तान के लघु इतिहास को सावधानीपूर्वक खंगाला है। विभाजन की त्रासदी को झेलनेवाले पाकिस्तानी लेखकों की आंखों में उतरी नमी को महसूस करने वाली नूर ने वहां के बाशिंदों की कशमकश व जद्दोजहद की दास्तान को शब्दों का जामा पहनाया है। अपनी जन्मभूमि कश्मीर की महत्ता प्रतिष्ठित करती हुई बहुचर्चित लेखिका चंद्रकांता ने अपने यात्रा वर्णनों में कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ उसके ऐतिहासिक परिदृश्य में बसे संस्कृताचार्यों, शैवाचार्यों, सूफी संतों, महान राजाओ, राजनीतिक उथल–पुथल, आक्रमणकारियों–विजेताओं की ध्वंसात्मक राजनीति व धर्मांधता का प्रतिबद्वरूप से खुलासा किया है। यह स्मृतियां मात्र मेरे निजी जिए भोगे सुख–दुख की नहीं है, इसमें पूरे कश्मीरियों की संस्कृति, लोक रंग–राग और समस्याओं से जुड़े संताप भी हैं, सत्ता द्वारा पोसी गई व्यवस्था की गहराई में जाकर, उनसे मनुष्य के स्वप्नों, आकांक्षाओं और अधिकारों से टकराव की द्वंद्वात्मक पड़ताल भी है।[6]

भारत का पाठक संस्कृति व सभ्यता के ठोस धरातल पर जन्मा है। इसलिए हिन्दी यात्रा शिल्पियों ने हमेशा अपनी रचनाओं में पर्यटन स्थल विशेष की सांस्कृतिक गरिमा को प्रतिष्ठित किया है। श्रीमती प्रज्ञा शुक्ल ने 'आस्ट्रेलिया – संसार का सबसे छोटा महाद्वीप' में आस्ट्रेलिया के विभिन्न प्रांतों जैसे मेलबार्न, सिडनी, कैनबेरा में विकसित संस्कृति का अभूवपूर्व वर्णन किया है। इस संस्कृति पर विक्टोरियन प्रभाव के भी प्रमाण दिए हैं। श्री सुवास कुमार ने 'जिस देश का वासी ईश्वर है' नामक यात्रा वृत्तांत में ट्रिनिडाड की भूमि पर फलने–फूलने वाली संस्कृति का रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। ट्रिनिडाड में भारतीय संस्कृति की महक पाकर लेखक अभिभूत हो गया। 'शगुआनाज की तरफ है ट्रिनिडाड का प्रसिद्ध दिवालीनगर अर्थात नेशनल काउंसिल फॅार इंडियन कल्चर का बड़ा कैम्पस, जहां साल भर भारतीय जीवन से संबंधित सांस्कृतिक गतिविधियां चलती रहती है। मेरे ट्रिनिडाड पहुंचने का समय उत्सवों से भरा भी था। लोग महीने भर दिवाली मनाते हैं, हिंदू शराब छूते तक नहीं। दशहरा, दिवाली, फगुवा होली, ईद, मुहर्रम हो या क्रिसमस – इन्हें पूरा देश धूम–धाम से मनाता है।'[7]

भारत के विस्तृत प्रातों में भी सांस्कृतिक विविधता के इतने नमूने मिल जाते हैं जो पाठक का चौंका देने में सक्षम हैं। सुदूर गांवों की संस्कृति आज के शहरी जीवन में पनपने वाले पाठक वर्ग के लिए सुखद आश्चर्य का विषय बन जाता है जिसका उत्कृष्ट उदाहरण प्रख्यात लेखक श्री चंद्रकांत देवताले ने बस्तर ज़िले के दूर–दराज इलाकों में बसे आदिवासियों के जीवन के जीवंत चित्र उपस्थित करते हुए दिया है। प्रसिद्ध लेखिका मृदुला गर्ग ने 'कुछ अटके, कुछ भटके' नामक यात्रा ग्रंथ में संकलित लेख 'असम में एक रात' में असम के युवकों के आर्थिक संघर्श, रोज़मर्रा की जद्दोजहद, बाल सुलभ प्रकृति, उत्सव–प्रिय मानस का लेखा–जोखा दिया है। साथ ही उन्होंने भ्रष्टाचार व शोषण के शिकार इन इलाकों के युवकों द्वारा आतंकवाद के जोखिम भरे विनाशकारी पथ पर चल निकलने के कारणों की भी बेबाक अभिव्यक्ति की है।[8] श्रीमती उर्मिला जैन ने 'देश–देश में, गांव–गांव में' नामक ग्रंथ में पूर्वी अफ्रीका

में बसनेवाले मसाई जाति के जीवन–यापन की दिल दहलाने वाली जानकारी के साथ वहां की आदिम संस्कृति का टटका प्रभाव प्रस्तुत किया है। विश्व के विभिन्न देशों की संस्कृति की अध्ययनशीलता की प्रवृत्ति वर्तमान यात्रा लेखकों की विशिष्टता बनती जा रही है।

स्वनामधन्य लेखिका शिवानी ने अपने 'यात्रिक' शीर्षक लेख में विवाह, परंपरा, परिवार के दृढ़ स्तंभों पर टिकी भारतीय संस्कृति की तुलना में लीव टुगेदर, विवाह–विच्छेद, आडंबर, विलासिता, कृत्रिमता, वैभव के मद में दुराग्रह की भावना से आपूरित पाश्चात्य संस्कृति पर जबरदस्त चोट की है। प्रत्येक जाति व भूमि का अपना स्वाद होता है। सैलानी लेखकों ने अपने पर्यटन स्थल के ज़ायके का चटकदार वर्णन करते हुए रुचिसम्पन्न पाठक को उत्साहित किया है। पेट के रास्ते दिल तक पहुंचने की कहावत को साकार करते हुए लेखक पाठक को भोज्य रस का संपूर्ण आनंद देने का सम्यक प्रयास करता है। 'तेहरान में पहला जुमा' में असगर वजाहद लिखते हैं 'खाना तैयार हो गया। मेज़ पर लगाया गया। लिविंग रूम की बत्तियां सूरजमुखी फूल की तरह खिल गईं। सलाद, पनीर, चिकन पुलाव, चिकन कोरमा। और कई तरह के मुरब्बे। चिकन बिरयानी के उपर खुरचन देखकर मुझे कुछ हैरत हुई। वजह यह कि लखनउ में जब बिरयानी पकाई जाती है तो खुरचन बन जाए इसका खास ख्याल रखा जाता है। मुझे लगा कि यह परंपरा भी ईरान की है।[9]

भारतीय जनमानस धार्मिक आंचल का आसरा खोजता है। यात्री लेखक ने विश्व के हर कोने में अपनाए गए धार्मिक विश्वास व प्रथाओं का खुलेआम वर्णन किया है। धार्मिक संकल्पनाएं, इबादत के स्थल, सांप्रदायिक मत व पौराणिक कथाओं ने भी समकालीन यात्रा साहित्य में अपना वजूद कायम किया है। लेखिका माला वर्मा ने 'पिरामिडों के देश' नामक अपने यात्रा ग्रंथ मे मिस्री धर्म में मृत्योपरांत जीवन के विश्वास के बल पर निर्मित विश्व विख्यात पिरामिडों से जुड़ी धार्मिक मंशाओं को वाणी दी है। इसी प्रकार माधुरी छेड़ा ने 'सफर–ए–ईरान : एक यादगार सफर', हसन जमाल कृत 'हाजिर हूं ए अल्लाह हाजिर', अशोक कुमार पाण्डेय रचित 'इस्तांबुल में हमारा प्रवास' में अरब राष्ट्रों की धार्मिक स्थिति का जायज़ा दिया है।

आज के वैश्वीकरण व बाज़ारीकरण के युग में विश्व के तमाम देश उन्नति के नाम पर सरपट दौड़ रहे हैं। गला–काट प्रतियोगिता व उपभोक्तावादी संस्कृति ने मल्टीप्लेक्सेज़ व मॉल कल्चर की तादाद बढ़ाई है। हिंदी का पाठक इस आपाधापी के माहौल का नीरव अनुशीलन करने वाले लेखक का साथ निभाता है। श्री अमित कुमार ने 'बुलबुला नही, एक समूची दुनिया' नामक या्त्रा संस्मरण में दुबई के शापिंग मॉल व सुपर बाज़ारों का रोचक वर्णन किया है। वातानुकूलित आरामदेह परिवेश में सुपर बाज़ारों का आकर्षण, सुगंधों, परिधानों, प्रसाधन सामग्रियों से भरी–पूरी दुकानें, बच्चों के लिए खेल–कूद व पचासों तरह के विडियो खेलों की व्यवस्था से लैस बर्जुमान प्लाज़ा, ओसिस सेंटर, टाउन सेंटर, सिटी सेंटर की तड़क–भड़क का लेखक ने विवरण दिया है। इसी तरह 'मैंने दुनिया देखी' में यात्री लेखक पद्मचंद्र सिंघी ने अमरीका, इटली, इंग्लैंड में विकसित बाज़ारवाद व उपभोक्तावादी संस्कृति का खुलासा किया है।

विज्ञानचालित मानव की प्रकृति के प्रति दिनोंदिन बढ़ती हुई उदासी उसे पर्यावरण संकट व प्राकृतिक असंतुलन की कगार पर खड़ी कर रही है। कविता या कहानी में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य की तुलना में यात्रा संस्मरणों में वर्णित प्रकृति अधिक जीवंत और अपीलिंग लगती है। लेखक अपने साथ अपने प्रकृति –प्रेमी पाठक को हिमाच्छादित प्रदेशों की ठिठुरन से लेकर जल–प्रपातों के घर–घर नाद तक, वन–प्रांतारों की नीरवता से लेकर बाग–बगीचों में खिले फूलों की खूबसूरती तक का आस्वादन कराता है। श्री गिरधर राठी ने 'नए चीन में दस दिन' में चीन के प्राकृतिक सौंदर्य का सुवास बिखेरा है।

हिंदी यात्रा साहित्य ने कितने ही नवीन तथ्यों का अंबार अपने पाठकों के समक्ष लगाया है। खोजी लेखक पाठक में जीवन के प्रति आशा व उल्लास का संचार करता है। जीवन–युद्ध में जर्जर मानव को आगे बढ़ने का संदेश देता है। घुम्मकड़ी के नशे में दीवाना बनाने का बीड़ा उठाता है। अपने संकुचित दायरे में से निकलकर जीवन के व्यापक कर्म–क्षेत्र में पर्दापण करने का साहस जुटाता है। वैश्विक एकता व सर्वधर्म सम्भाव का मंत्र फूंकता है। जीवन की एकरसता व थकावट से निकलकर आनंद व आत्मिक सुख के दो पल बांटता है। निस्संदेह यात्री लेखक सेतु निर्माता की भूमिका अदा करता है। अतः यह विधा रोचक वर्णन, कल्पना–प्रसूत उड़ान, साहसिक चेतना व उत्कट जिजीविषा का प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 नए चीन में दस दिन – गिरधर राठी, किताबघर , नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997, पृ– 41

2 हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार – डॉ बी.आर. धापसे, कीर्ति प्रकाशन औरंगाबाद 2009 पृ– 10

3 समकालीन सृजन – यात्राओं का ज़िक्र, संपा – मानिक बच्छावत आनंद प्रकाशन, कोलकाता, वर्ष 2008 पृ 356

4 वागर्थ पत्रिका, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, दिसंबर 2008 पृ–148

5 वागर्थ फरवरी 2008 पृ–148

6 मेरे भोजपत्र – चंद्रकांता, अरू पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली पृ 7

7 समकालीन सृजन – यात्राओं का ज़िक्र, संपा – मानिक बच्छावत आनंद प्रकाशन, कोलकाता, वर्ष 2008 पृ – 399

8 कुछ अटके, कुछ भटके – मृदुला गर्ग, पेन्गुइन बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली पृ 124

9 समकालीन सृजन – यात्राओं का ज़िक्र, संपा – मानिक बच्छावत आनंद प्रकाशन, कोलकाता, वर्ष 2008, पृ– 331

***

सामाजिक लागत लेखांकन

संजय कुमार
व्याख्याता, ए.बी.एस.टी.
राजकीय (पी.जी.) महाविद्यालय, कालाडेरा, जयपुर

''संसार समतल है'' भारत में निजीकरण, उदारीकरण तथा भूमण्डलीकरण के कारण पिछले दो दशकों में तीव्र विकास हुआ है। इससे रोजगार के साधनों में वृद्धि, जीवन स्तर, आत्मनिर्भरता तथा सुरक्षात्मक दृष्टि से विकास हुआ है। हमारी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान कायम हुई है। यह औद्योगिक विकास समृद्धि के साथ अनेक समस्याओं को भी उत्पन्न करता है। जिसमे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनी प्रदूषण तथा नैतिक प्रदूषण सम्मलित है। इससे मानव स्वास्थय पर विपरीत प्रभाव, कार्यदशाऐं, औद्योगिक प्रतिस्पर्धा एवं राजनैतिक दुष्प्रभावों से होने वाली समस्याओं की लागत समाज को वहन करनी होती है। इसलिए समाज के प्रति निगम क्षेत्र को अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करना चाहिए।

निगम क्षेत्र के उत्तरदायित्व को प्रमुख रूप से चार क्षेत्रों जिसमें वातावरण, सामुदायिक, कर्मचारियों की क्षमता तथा उत्पाद विकास के रूप में विभाजित कर सकते है। परम्परागत लेखांकन प्रणाली में व्यावसायिक लेनदेनों का प्रारम्भिक लेखा, वर्गीकरण व खतौनी तथा वित्तीय परिणामों के विश्लेषण तक सीमित है। जबकि आवश्यकता सामाजिक उत्तरदायित्व लेखांकन के विकास तथा प्रभावपूर्ण रूप से लागू करने की भी है। व्यावहारिक दृष्टि से कई क्षेत्रों में औद्योगिक क्षेत्र निवासीय क्षेत्रों से नजदीक है। इसका प्रभाव निम्नलिखित रेखाचित्र से स्पष्ट है :–

उपरोक्त रेखाचित्र निगम क्षेत्र की उत्तरदायित्व को निर्धारित करता है। यदि सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह हेतु सामाजिक लागते निगम क्षेत्र को वातावरण क्षेत्र, सामुदायिक क्षेत्र, कर्मचारी सेवा तथा अन्य क्षेत्रों पर कार्य करना होगा। इससे स्थानीय समुदाय से जुड़ाव बनता है। विपणन, मानव संसाधन आपूर्ति, ग्राहकों तक आसान पहुँच एवं सन्तुष्टि तथा राजनैतिक गतिविधियों सम्बन्धि लाभ निगम क्षेत्र को प्राप्त होता है। सामाजिक लागतो के लेखांकन से कर की बचत होती है। पूंजीगत लागतो को तुलन–पत्र में सम्पत्ति पक्ष में दर्शाने से व्यवसाय की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनती है।

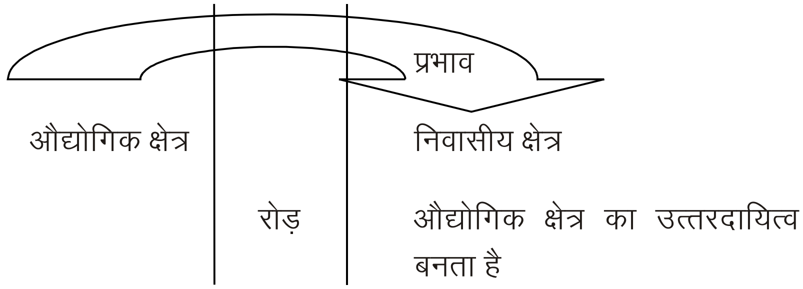

सामाजिक निष्पति समिति के क्षेत्र :— नेशनल ऐसोसियेशन ऑफ एकाउटेंटस समिति ने निम्नलिखित चार क्षेत्र बतायें है।

सामुदायिक विकास :— इसमें परोपकारिक स्वभाव की क्रियाओं को सम्मलित किया गया है। निगम क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को चिकित्सा, आवास, कार्यालय समय के दौरान भोजन व चाय नाश्ते की सुविधा प्रदान करना, कर्मचारियों के बच्चों को शिक्षा की सुविधा एवं कर्मचारियों का प्रशिक्षण व स्व—विकास के वातावरण का निर्माण करना सम्मलित है। कर्मचारियों को रियायती दर पर परिवहन सुविधाऐं उपलब्ध करवाना है। समय—समय पर सांस्कृतिक गतिविधियों, स्वास्थ्य क्लब, मनोरंजन क्लब, शहरी नियोजन संबंधी सुविधाऐं प्रदान करना है। कर्मचारियों के विवादों का निपटारा करना एवं स्वस्थ वातावरण बनाये रखना सामुदायिक विकास है।

मानव संसाधन :— इसमें कल्याणकारी योजनाओं को सम्मलित किया जाता है। सामाजिक दायित्व के निर्वाह के लिये निगम क्षेत्र को रोजगार विकल्पों को बढ़ावा देना चाहिये। कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना तथा अभिप्रेरण योजनाऐं लागू करना जिसमें बोनस, प्रीमियम, पदोन्नती सम्मलित है। कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये प्रशिक्षण व विकास कार्यक्रम बनाना है।

भौतिक संसाधन और वातावरण में योगदान :— निगम क्षेत्र द्वारा रोजगार विकल्पों में वृद्धि करना, नियमित वेतन, पदोन्नति, कार्यदशायें तथा नियोक्ता — कर्मचारियों के अच्छे संबंध से ही भौतिक संसाधनो का उचित उपयोग हो सकता है। व्यावसायिक जगत को समाज के लिये बैंक, पोस्ट ऑफिस, हॉस्पिटल, जल सुविधाऐं, स्वास्थ्य क्लब तथा समाज कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं का विकास करना सामाजिक उत्तरदायित्व हैं।

उत्पाद या सेवा योगदान :— उत्पादन में प्रमाप स्तर एवं पर्याप्त गुणवत्ता रखना जिसमें मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव ही सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसमें उत्पाद डिजाइन व पैकिंग, ग्राहकों को उत्पाद गुणवता की जानकारी, वांरटी सुविधा तथा विक्रय पश्चात् ग्राहक संतुष्टि को बनाये रखना सामाजिक उत्तरदायित्व की परिधि में आता है।

STATEMENT OF SOCIAL COST

PARTICULARS	DETAILS AMOUNT	NET AMOUNT
ENVIRONMENT		
1. Water harvesting		
2. Air pollution control		
3. Noise pollution control .		
4. Optimum use of natural resources		
5. Landscape renovation		
TOTAL (A)		

COMMUNITY

1. Refreshment
2. Entertainment
3. Transportation
4. Housing
5. Sports
6. Health
7. Education

TOTAL (B)

SERVICES TO EMPLOYEES

1. Job enrichment
2. Communication
3. Self Development
4. Performance Measure
5. Training
6. Incentive plans

TOTAL (C)

PRODUCT DEVELOPMENT

1. Satisfaction Service
2. Quality
3. Warranty
4. Proper Advertising
5. Packing

TOTAL (D)

GRAND TOTAL

सामाजिक लेखांकन के क्षेत्र में सार्वजनिक व निजी कम्पनियों के योगदान का विश्लेषण कोटिक्रम इस प्रकार है :–

PUBLIC SECTOR COMPANIES

S.No.	NAME OF COMPANIES
1.	BHEL
2.	SAIL
3.	ONGC
4.	NTPC
5.	MARUTI SUZUKI LTD.

PRIVATE SECTOR COMPANIES

S.No.	NAME OF COMPANIES
1.	INFOSYS
2.	RELIANCE INDUSTRIES LTD.
3.	HDFC
4.	L&T LTD.
5.	MAHINDRA & MAHINDRA LTD.

भारत में सामाजिक लागतों तथा सामाजिक लाभों का वित्तिय विवरणों में दिखाऐ जाने संबंधी वैधानिक प्रावधान नहीं है। इसलिए कम्पनियां केवल पूरक सूचनाऐं प्रदान करती है। सामाजिक अंकेक्षण के क्षेत्र में TISCO अग्रणीय रही है। कम्पनी ने जुलाई 1980 में अपना प्रथम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् सीमेन्ट कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया, स्टील ऑथौरेटी ऑफ इण्डिया, एम.एम.टी.सी. आदि ने अंकेक्षण को अपनाया। धारा 227 (4ए) के अर्न्तगत सामाजिक अंकेक्षण ऐच्छिक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्ययन की परिकल्पना सार्थक है तथा सामाजिक लेखांकन के महत्व को स्वीकार करना चाहिए। वर्तमान औद्योगिक जगत में सामाजिक लेखांकन एवं उत्तरदायित्व को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। यह शोध पत्र सामाजिक लेखांकन की भारतीय परिक्षेत्र में निगम क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. INFOSYS.COM (वार्षिक रिर्पोट 2011)
2. SAIL (वार्षिक रिर्पोट 2011)
3. ONGC (वार्षिक रिर्पोट 2011)
4. मारूती सूजुकी लि. (वार्षिक रिर्पोट 2011)
5. L & T LTD. (वार्षिक रिर्पोट 2011)
6. रिलायंस इण्डस्ट्रिज लि., (वार्षिक रिर्पोट 2011)
7. भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्स लि., (वार्षिक रिर्पोट 2011)
8. जैन, खण्डेलवाल, पारीक – लेखांकन के सिद्धान्त एवं व्यवहार (रमेश बुक डिपो)
9. ग्लेतियर, अण्डरडाउन – लेखांकन के सिद्धान्त एवं व्यवहार (पिटमेन पब्लिशिंगलि)
10. जवाहर लाल – वित्तिय लेखांकन (विहलर पब्लिशिंग कम्पनी लि.)
11. जोयल सेगल – प्रबन्ध लेखांकन
12. नेशनल एसोसियेशन ऑफ एकाउण्टस (सोशल परर्फोमेन्स रिर्पोट)
13. वित्तिय प्रबन्ध , एस.एन. माहेश्वरी (सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, न्यू दिल्ली)

***

आत्माभिव्यक्ति का श्रेष्ठ मंच – 'ब्लॉगिंग'

डॉ. (श्रीमती) ऋता दीक्षित
प्रवक्ता हिन्दी
एल.एम.एस. डिग्री कालेज, इशारा नगर (सकीट), एटा

आत्मानुभूति एवं आत्माभिव्यक्ति किसी भी व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण अवयव हैं। अनुभूतियाँ सघन हों और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम, मंच और अवसर प्राप्त न हो, तो यह दुर्भाग्य का विषय होता है। आज विज्ञान के अधुनातन आविष्कारों ने अभिव्यक्ति के अनेक सशक्त, सर्वसुलभ एवं सर्वव्यापक साधन उपलब्ध कराये हैं। ब्लॉग लेखन उनमें अन्यतम है। एक समय था जब किसी की विचार प्रवणता अभिव्यक्ति के लिए तरसती थी, किन्तु आज पल भर में ब्लॉग लेखन के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती है। बस, वे साधन हमारे पास होने चाहिए। कदाचित् प्राचीन काल में लिखा गया समग्र साहित्य हमें उपलब्ध नहीं हो सका, क्योंकि उसकी सुरक्षा–संरक्षा न हो सकी।

आज ब्लॉग लेखन अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है। यह तो सच है कि अभी वह एक वर्ग विशेष और व्यक्ति विशेषों तक सिमटा हुआ है, किन्तु थोड़े से प्रयास से भी कोई भी साधारण व्यक्ति उससे जुड़ सकता है। माना कि किसी सामान्य व्यक्ति को स्वीकृति का व्यापक फलक मिलने में समय लगेगा। यह कठिन हो सकता है, असम्भव कदापि नहीं। भारत में ब्लॉग लेखन का इतिहास पुराना नही है, क्योंकि सूचना एवं जनसंचार क्रान्ति ही पुरानी नहीं है। अभी विगत कुछ वर्षों में ही आमूल–चूल परिवर्तन देखने में आया है। फिर भी ब्लॉग लेखन की उपादेयता और लोक स्वीकृति व्यापक हो चुकी है। शिष्ट–संवाद ब्लॉग लेखन का प्राणतत्व है और विचार–सम्प्रेषण और संप्रसारण इसके सुपरिणाम हैं। अतः ब्लॉग लेखन की उपादेयता व्यष्टि से लेकर समष्टि तक स्वतः सिद्ध है।

वास्तव में, ब्लॉगिंग प्रकारान्तर से डायरी लेखन ही है। डायरी अर्थात् दैनन्दिनी लेखन का अपना एक स्वभाव होता है, जिसके महत्व से सभी परिचित हैं। एक लम्बे समय से विशिष्ट शिक्षित लोग डायरी लेखन के द्वारा अपने विचार–वैभव तथा अनुभव–सम्पदा से आने वाली पीढ़ियों को दिशा–बोध देते रहे हैं। आज का ब्लॉग लेखन पहले के डायरी लेखन से इस अर्थ में सर्वथा भिन्न एवं विशिष्ट है कि पहले की डायरी सार्वजनिक डायरी नहीं हुआ करती थी, जबकि ब्लॉगिंग एक सार्वजनिक डायरी है। इसका प्रयोग समाज को अपने विचारों, अनुभवों के द्वारा तत्काल लाभान्वित करने में किया जा सकता है। आज ब्लॉगजगत् में अनेक लोग ऐसे हैं जो अपनी सारस्वत–कलात्मक–काव्यात्मक अभिव्यक्तियों से समाज को बहुत कुछ दे रहे हैं। वे सामाजिक सरोकारों से जुड़कर अपनी ब्लॉगिंग को सार्थक बना रहे हैं। आज ब्लॉग लेखन पर बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ, सम्मेलन और परिचर्चायें आयोजित हो रही हैं।[1]

ब्लॉग लेखन की उपादेयता की सुरक्षा–संरक्षा हेतु अनिवार्य है शालीनता और मर्यादा। परछिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति, ईर्ष्या–भावना, व्यक्तिगत द्वेष एवं चाटुकारिता ब्लॉग लेखन की उपादेयता को

दूषित करते हैं। ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनका नाम ब्लॉगजगत् का जाना–पहचाना है, किन्तु सामाजिक सरोकारों से जुड़ने की जगह एक दूसरे की चापलूसी, आलोचना, अनावश्यक टिप्पणी करने का शौक तथा स्वभाव, अपना एवं दूसरों का समय नष्ट करने में लगाते हैं। ऐसे लोग सामाजिक सरोकारों से जुड़कर काम करने वालों के मार्ग में अवरोध डालने में ही अपनी कुशलता मानते हैं। किन्तु यह भी सच है कि सार्थक ब्लॉगिंग यदि सामाजिक सरोकारों से जुड़ी है तो आपके मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाला कभी सामने से हमला नहीं करेगा, क्योंकि यदि आप गरीबों के लिए काम कर रहे हैं, नारी–उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठा रहे हें, समाज में शान्ति की बात कर रहे हैं, समाज की अश्लीलता को धिक्कार रहे हैं, मानव–मूल्यों के क्षरण पर चिन्ता जता रहे हैं, राष्ट्रीय एकता के लिए काम कर रहे हैं, तो जो भी आपके इस मुद्दे के खिलाफ बोलेगा, वह स्वयं ही बेनकाब हो जायेगा। अतः ब्लॉगिंग को स्वयं के लिए स्वयं ही सुन्दर आचार–संहिता बनानी होगी, ताकि उसकी उपादेयता सार्वकालिक बनी रहे।

किसी भी प्रकार के लेखन और प्रणयन की अपनी कला होती है, अपना ही सौन्दर्य होता है। बागीश शुक्ल की धारणा है कि– "पढ़ना एक ऋण का स्वीकार है, लिखना उस ऋण की अदायगी। लिखना कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है।"[2] सिमोन द बोबुआर भी कहती हैं–"पढ़ने से भी सुखद चीज कोई है तो वह है–लेखन।"[3] अतएव बेकन ने कहा था कि लिखना इंसान को पूर्ण बनाता है। शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि जिसने भी इतिहास में अपना निशान छोड़ा, उन्हें लिखने में महारत हासिल थी। सर इशाक न्यूटन, थौमस जेफरसन व जोहान सेबेस्टियन आदि ऐसे ही कुछ विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। यह तर्कशक्ति के विकास में बहुत बड़ा सहायक सिद्ध होता है।[4] अतएव लेखक को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि –"लेखनी की कला वह विभूति है, जो सबको समान रूप से प्राप्त नहीं होती। दर्शन और श्रवण से उत्पन्न अनुभूतियों को लिपिबद्ध रूप में व्यक्त करना, घटनाओं का सजीव और रोचक, स्पष्ट और सरल, सत्य और साधार चित्रण करना तब तक संभव नहीं है, जब तक लेखक अपनी कलम का धनी न हो।"[5] अतः लेखन के इस आदर्श को अंगीकार, आत्मसात् कर जब कोई ब्लॉगर अपनी अनुभूतियों को शब्दायित करेगा तो उसके भाव स्वतः ही 'सत्यं–शिवं–सुन्दरम्' की परिधि में अभिव्यक्त होंगे।

हिन्दी में ब्लॉग लेखन का फलक बहुत व्यापक है। सम्प्रति पच्चीस हजार से अधिक हिन्दी ब्लॉगर क्रियाशील हैं। हिन्दी के प्रख्यात ब्लॉगर श्री सिद्धार्थ भांकर त्रिपाठी "सत्यार्थमित्र" नाम से ब्लॉग लिखते हैं। एक अन्य ब्लॉगर की ब्लॉग लेखन की उपादेयता विषयक जिज्ञासा का समाधान करते हुए श्री त्रिपाठी ने लिखा– "लिखने का सबसे बड़ा फायदा यह है कि आप एक विषय पर अपनी जानकारियों को सुव्यवस्थित करने की कोशिश करते हैं, जिससे विचारों में स्पष्टता आती है। इससे व्यक्तित्व का विकास होता है। विकसित व्यक्तित्व से अच्छे काम होते हैं। अच्छे कार्य करने से खुशी मिलती है, आनन्द मिलता है। जहाँ तक ब्लॉग लिखने की बात है, तो यह एक बहुत बड़ा मंच है, जिस पर लिखकर आपकी रचना एक ही क्षण में दुनियाँ भर के पाठकों तक पहुँच सकती है। ब्लॉग पर किसी भी ढंग से, कुछ भी लिख सकते हैं, जिसे शायद कोई पत्र–पत्रिका न छापे, चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो। इसमें आपको पूरी स्वतंत्रता है।"

अभिव्यक्ति के इस विराट् मंच के बारे में एक ब्लॉगर कहता है कि "कभी–कभी इस मंच पर यह देखने को मिलता है कि लोग उनको मिलने वाली प्रतिक्रियाओं से व्यथित हो उठते हैं और फलस्वरूप कई बार आपा तक खो देते हैं। यह निश्चित है कि इस संसार में हर व्यक्ति के मत समान नहीं हो सकते, विचारों में मतभेद होना स्वाभाविक है, और मतान्तर के द्वारा एवं एक स्वस्थ वाद–विवाद के फलस्वरूप ही हम किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने में सफल हो पायेंगे। ब्लॉगिंग का उद्देश्य है किसी भी समस्या अथवा विषय का तार्किक अनुसन्धान, लेकिन यदि हम विचारों के ग्राह्य नहीं हो पायेंगे, तब तक निष्कर्ष पर पहुँचना दूर की कौड़ी ही साबित होगी। ब्लॉगिंग वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्वपूर्ण है। स्वस्थ विचार से परिपूर्ण लेख हमारे मन को सुरभित करते हैं और हमारे जीवन को उल्लास से पोषित कर देते हैं। इसलिए एक ब्लॉगर का यह धर्म है कि वह सकारात्मक, प्रेरणादायक, ऊर्जावान् विचारों को लेकर, समस्याओं के समाधान को लेकर खुशियों के पलों को आपस में बांटे।"

आजकल हिन्दी–ब्लॉगिंग का क्षेत्र इतना व्यापक एवं सुदृढ़ हो गया है कि इसके लिए एक नया, किन्तु भारत की आत्मा, परम्परा और मिट्टी की सौंधी गन्ध लिए शब्द प्रयोग किया जा रहा है– "चिठ्ठा"। यह शब्द सर्वप्रथम हिन्दी चिठ्ठाकार आलोक कुमार द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जो कि अब इण्टरनेट पर हिन्दी जगत् में प्रचलित हो गया है। यह शब्द अब गूगल द्वारा भी अपने शब्दकोष में शामिल किया जा चुका है। हिन्दी का पहला चिठ्ठा 'नौ दो ग्यारह' माना जाता है, जिसे आलोक कुमार ने पोस्ट किया था। चिठ्ठों में पाठकों को अपनी टीका–टिप्पणियाँ देने की क्षमता उन्हें एक इण्टरैक्टिव प्रारूप प्रदान करती है। अधिकतर चिठ्ठे मुख्य तौर पर पाठ रूप में होते हैं, हालाँकि कुछ आर्ट ब्लॉग्स, फोटोग्राफी ब्लॉग्स, एम.पी.3 ब्लॉग्स एवं पॉडकास्टिंग पर भी केन्द्रित होते हैं। एक अन्य प्रकार की चिठ्ठेकारी माइक्रो ब्लॉगिंग कहलाती है। दिसम्बर 2007 तक, ब्लॉग सर्च इंजन टैक्नोरैटी द्वारा ग्यारह करोड़ बीस लाख (11,20,000.00) चिठ्ठे ट्रैक किये जा रहे थे।

वर्तमान में सर्वत्र कम्प्यूटर और इण्टरनेट का साम्राज्य है। ये दोनों ब्लॉगिंग के अनिवार्य तत्व हैं। सर्वसुलभता इनकी अन्यतम विशेषता है। फलतः इस समय ब्लॉगिंग अपने चरम पर है। अनेक प्रख्यात हस्तियों के ब्लॉग लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं और उन पर अपने विचार भी भेजते हैं। चिठ्ठों पर लोग अपने पसन्द के विषयों पर लिखते हैं। कई चिठ्ठे विश्व भर में मशहूर होते हैं, जिनका हवाला कई नीति–निर्धारक मुद्दों में किया जाता है। सम्प्रति लेखन का थोड़ा सा भी शौक रखने वाला व्यक्ति अपना एक ब्लॉग बना सकता है। चूंकि यह निःशुल्क होता है, अतः सरलता से अपना लिखा पूरे विश्व के सम्मुख पहुँचा सकता है। एक चिठ्ठाकार ने चिठ्ठे को परिभाषित करते हुए ठीक ही कहा है– "विचारों की आग की तपन को मानस तक पहुँचाने का तन्दूर, जिससे न तो देश दूर है और न विदेश। प्रत्येक नेक तन–मन के आस–पास है जिसका बसेरा। ऐसा नूतन है सबेरा, जो प्रातः काल की सूर्य की ऊर्जा प्रदायी किरणों के तौर पर मन में उतरता है और बस जाता है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राष्ट्रीय ब्लॉगर गोष्ठी एवं कार्यशाला : महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय, वर्धा, दिनांक 9—10 अक्टूबर, 2010।
2. बागीश शुक्ल : पुस्तक वार्ता, अंक 4, मार्च—अप्रैल 2002, पृ0 6।
3. सिमोन द बोबुआर : क्लोद फ्रांसिस और फेर्नांद गोतिए, पृ0 47।
4. दैनिक जागरण, 5 मार्च, 2003।
5. कमलापति शास्त्री पुरुषोत्तमदास टंडन, पत्र और पत्रकार, पृ0 283।

***

73वां संविधान संशोधन अधिनियम एवं पंचायती राज चुनावों का अवलोकन : हरियाणा राज्य के विशेष संदर्भ में

डॉ. छैलबिहारी
प्रवक्ता, जे.डी.पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर
डॉ. सविता दिवेश
अध्यापिका, रा.मा. विद्यालय, मूडली बस्सी, जयपुर

स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं उचित अंतराल पर नियमित चुनाव प्रजातंत्र की सफलता की एक अनिवार्य शर्त है क्योंकि इससे राजनीतिक व्यवस्था को औचित्यता प्राप्त होती है। साथ ही ये लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने हेतु स्वर्णिम अवसर प्रदान करते है। स्थानीय निकायों जोकि जनता के अधिक निकट होने के कारण प्रजातांत्रिक ढांचे को सुदृढ़ आधार प्रदान करते है, के सम्बन्ध में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाते है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सदैव ही विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा समय–समय पर पारित अपने पंचायती राज अधिनियमों में स्थानीय निकायों के नियमित एवं निष्पक्ष चुनावों का प्रावधान किया जाता रहा है। लेकिन अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन पावन प्रावधानों का सभी राज्य सरकारों जिसका हरियाणा अपवाद नहीं है, द्वारा खुले आम उल्लंघन किया गया है।

हरियाणा राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि 73वें संविधान संशोधन (1992) के पारित होने से पूर्व राज्य में जोकि 1 नवम्बर 1966 को भारत के राजनीतिक मानचित्र पर अस्तित्व में आया, ग्राम पंचायत के चुनाव सन् 1971, 1978, 1983, 1988 एवं 1991 में सम्पन्न हुए जोकि अनियमितता प्रदर्शित करते है। इसी प्रकार पंचायत समिति के चुनाव तीन बार अर्थात 1972, 1983 एवं 1991 में हुए। स्पष्ट है कि इन निकायों के पहले और दूसरे चक्र तथा दूसरे और तीसरे चक्र के चुनावों में क्रमशः 11 और 8 वर्ष का अंतराल रहा। जहां तक जिला परिषद का सम्बन्ध है, यह उल्लेखनीय है कि इन निकायों के चुनाव केवल एक ही बार 1992 में हुए और अगले ही वर्ष अर्थात 1993 में इन्हें भंग कर दिया गया और फिर कभी पुर्नजीवित नहीं किया गया। अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की। इन संस्थाओं की अनिश्चितता एवं अनियमितता का सामना करना पड़ा तथा ये राज्य में सिद्वान्तहीन राजनीतिज्ञों की मनमानी का शिकार बनी रही। इन स्थानीय निकायों को राजनीतिक एंव मिथ्या आधारों पर तुच्छ अधिकारियों की सिफारिशों के आधार पर भंग किया जाता रहा। परिणामस्वरूप पंचायती राज संस्थाओं को कभी भी स्वशासित स्वरूप प्राप्त नहीं हो सका तथा यह राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों के हाथों की कठपुतली बनी रहीं।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 के अनुच्छेद 243–ई (3) में पचांयती राज संस्थाओं को नियमित एवं निश्चित अन्तराल पर चुनाव करवाने की व्यवस्था की गई। 73वें संशोधन के अन्तर्गत हरियााणा राज्य मे पंचायती राज संस्थाओं के प्रथम बार चुनाव जनवरी 1995 में तत्कालीन विद्यमान संस्थाओं के भंग किये जाने पर हुए। तदनुसार इन संस्थाओं के

दूसरी बार चुनाव 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर जनवरी 2000 मे होने थे लेकिन 1999 में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनावों में सत्ताधारी गठबंधन (इण्डियन नैशनल लोकदल तथा भारतीय जनता पार्टी) को प्राप्त अभूतपूर्व सफलता जिसमें इसने सभी 10 स्थानों पर विजय प्राप्त की, ने इसकी समय पर पंचायती राज चुनाव करवाने सम्बन्धी सोच को बदल दिया तथा इसे विधानसभा चुनावो में भी इसे राजनीतिक लाभ प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया। लेकिन गठबंधन के सम्मुख मुख्य बाधा स्थानीय निकायों के चुनावों से सम्बन्धित उन पावन प्रावधानों की थी जिनके अन्तर्गत इनके चुनाव जनवरी 2000 मे होने थे अतः इस विषम स्थिति से बाहर निकलने हेतु गठबंधन ने दोहरी रणनीति तैयार की– प्रथम विधानसभा को अपनी सामान्य अवधि के समाप्त होने से 17 माह पूर्व भंग करना और द्वितीय पंचायती राज संस्थाओं समय से पूर्व इसके चुनाव करवाना। सरकार ने इस हेतु समस्त दांव पेच अपनाये उसमें अपने नेस्त हितो की पूर्ति के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष याचिका दायर कर दी। जिसमे पंचायती राज चुनावों को करवाने के लिए अधिक समय की मांग की गई। वास्तव में सरकार की इस चतुर चाल का उद्देश्य 22 फरवरी 2000 को होने वाले विधानसभा चुनावों के पश्चात् पंचायती राज चुनाव करवाने के लिए समय अर्जित करना था।

सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य महाअधिवक्ता के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशानुसार स्थानीय निकायों के चुनावों को करवाने में सरकार के सम्मुख संभावित कठिनाईयों के सम्बन्ध में दिए गए तर्को को सुनने के पश्चात् राज्य सरकार को 31 मार्च, 2000 तक चुनाव करवाने की अनुमति प्रदान कर दी। इस प्रकार सत्ताधारी गठबंधन अंततः अपनी सुनियोजित चाल में सफल हो गया। 73वें संविधान संशोधन (1992) के अन्तर्गत प्रजातांत्रिक ढांचे में पंचायती राज संस्थाओं द्वारा प्राप्त महत्व को कम करने के लिए शायद यह पर्याप्त नहीं था। इसलिये हरियाणा सरकार द्वारा अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति हेतु इन संस्थाओं को सिद्वान्तहीन राजनीतिज्ञों की हाथ की कठपुतली बनाने के लिए तीसरे दौर के चुनावों में एक अन्य प्रयास जो यद्यपि सफल नहीं हो सका, किया गया। इस बार भी प्रेरक तत्व राजनीतिक लाभ उठाना ही था लेकिन रणनीति भिनन अर्थात स्थानीय निकायों के चुनावों को समय से पूर्व व विधानसभा चुनावों से पहले करवाने की थी।

उचित समय अवधि अनुसार हरियाणा में पंचायती राज संस्थाओं के तीसरे दौर के चुनाव इनकी 5 वर्ष की अवधि पूरी होने पर अप्रैल 2005 में होने निश्चित थे। साथ ही हरियाणा विधानसभा के चुनाव भी फरवरी 2005 में होने निश्चित थे क्योंकि इसका कार्यकाल भी मार्च 2005 में समाप्त हो रहा था लेकिन राज्य ने सत्ताधारी दल (इण्डियन सैशन लोकदल) जैसाकि पहले कहा जा चुका है, पंचायती राज संस्था के चुनावों को समय से पूर्व तथा विधानसभा चुनावों से पहले करवाने में रूचि रखता था। इसके पीछे स्पष्टतः मुख्य कारण दिसम्बर 2004 में सम्पन्न हुए संसदीय चुनावों में इसे मतदाताओं के हाथों मिली करारी हार था, यहां तक कि इन चुनावो में यह अपना खाता भी नहीं खोल पाई थी। यह उल्लेखनीय है कि कुल 10 में से 9 स्थानों पर कांग्रेस और शेष एक पर भारतीय जनता पार्टी को विजय प्राप्त हुई।

तत्कालीन सत्ताधारी दल अर्थात इण्डियन नेशनल लोक दल का लक्ष्य संसदीय चुनावों में खोई गई अपनी प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना था ताकि राज्य में निरंतर सत्ता में बनी रह सके जोकि आने वाले विधानसभा चुनावो में बहुमत प्राप्त करने से ही संभव था। इसे यह आशंका थी कि यदि विधानसभा चुनाव निर्धारित समय अर्थात पंचायती राज चुनावों से पूर्व होते है तो शायद इसकी वही स्थिति होगी जो संसदीय चुनावो में हुई है और यदि ऐसा हुआ तो यह सत्ता में नहीं बनी रहे सकेगी। अतः ऐसी किसी भी स्थिति से बचने के लिये इसने पंचायती राज चुनावों को निर्धारित समय से तीन माह पूर्व करवाने की रणनीति तैयार की। इसके पीछे इसकी यह सोच थी कि ऐसा करके वह ग्रामीण क्षेत्रो में राजनीतिक विभाजन उत्पन्न करने में सफल हो जाएगी तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देगी जिसमें ग्रामीण मतदाताओं का एक वर्ग सत्ताधारी दल को समर्थन देने के लिये बाध्य हो जाएगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो में प्रभाव रखने वाले मुख्य दो ही दल इण्डियन नेशनल लोकदल एवं कांग्रेस ही थे। सत्ताधारी दल की यह सोच थी कि पंचायती राज चुनाव सामान्यतः गांव के परस्पर गुटों के नेताओं में सीधा संघर्ष (मुकाबला) उत्पन्न करते है। यह विभाजन स्वतः एक समूह को इण्डियन नेशनल लोकदल का समर्थन लेने को बाध्य करेगा और बाद में दल को इस समूह का विधानसभा चुनावो में समर्थन प्राप्त होगा जोकि पंचायती राज चुनावों के तुरन्त बाद सम्पन्न होंगे। यहां यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि सैद्वान्तिक रूप से स्थानीय निकायों के चुनाव दलगत आधार पर नहीं होते है लेकिन वास्तविकता यह है कि सभी राजनीतिक दल अपने–अपने उम्मीदवारों को पूरी तरह से समर्थन प्रदान करते है।

सत्ताधारी दल ने अपनी इस सोची विचारी रणनीति का व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए राज्य विधानसभा से तीन विधेयक–हरियाणा पंचायती राज (द्वितीय संशोधन/ विधेयक) हरियाणा नगरपालिका (द्वितीय संशोधन) विधेयक तथा हरियाणा नगर निगम (द्वितीय संशोधन) विधेयक स्थानीय निकायों के चुनावों को विधानसभा चुनावों से पहले करवाने के उद्देश्य से पारी करवा लिए। संशोधन प्रावधानों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव सामान्य अवधि की समाप्ति से 60 दिनों की अपेक्षा 120 दिन पूर्व तथा नगरपालिका निकायों के चुनाव 30 दिन की अपेक्षा 90 दिन पूर्व करवाए जा सकते है। इन विधेयकों को राज्यपाल की स्वीकृति हेतु भेजा गया जिसने इस संदेश के साथ पुर्नविचार हेतु वापिस भेज दिया कि किसी भी स्थिति का सामना करने तथा चुनाव प्रक्रिया को पूरा करने हेतु विधमान प्रावधान पर्याप्त है। लेकिन सत्ताधारी दल जो अपनी पूर्व विचारशील योजना को आगे बढ़ाने के लिए कटिबद्धथा, ने संसदीय प्रजातंत्र के सिद्वान्तों को धूल में उड़ाते हुए इन विधेयकों को उसी रूप में राज्य विधानसभा से पारित करवा दिया। यहां इस सामान्य प्रकार का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि जब राज्यपाल किसी विषय पर अपनी गंभीर आपत्ति व्यक्त करता है, तो सत्ताधारी दल को उसे उसी रूप में पारित करवाने के लिये दबाव नहीं डालना चाहिए। संसदीय प्रजातंत्र की भावना के अनुरूप राज्यपाल के पास अब इन विधेयकों पर अपनी स्वीकृति प्रदान करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह गया। यद्यपि इन विधेयकों का पारित होना कानूनी रूप से गलत नही है लेकिन प्रजातांत्रिक मूल्य इतनी जल्दबाजी में स्थानीय निकायों के चुनाव करवाने के लिए कदम उठाने की स्वीकृति प्रदान नहीं करते।

इन विधेयकों के पारित होने के साथ ही पंचायती राज चुनावों को विधानसभा चुनावों से पूर्व करवाने का मार्ग प्रशस्त हो गया। राज्य निर्वाचन आयोग ने बिना किसी देरी के इन चुनावों को जनवरी 2005 में ही करवाने की तैयारी कर ली और इस आशय की कार्यवाहक समय सारिणी भी तैयार कर ली। स्थानीय निकाय के चुनावों को समय अवधि से पूर्व करवाने के प्रयास के साथ–साथ राज्य सरकार ने चुनाव संचालन नियमों में संशोधन कर दिया जिसके अनुसार चुनाव प्रक्रिया की समय अवधि को कम करते हुए इसे 20 अथवा इससे भी कम समय में पूरा करने की व्यवस्था की गई। यह स्मरणीय है कि प्रथम एवं द्वितीय दौर के पंचायत चुनावों की प्रक्रिया क्रमशः 49 और 41 दिन में पूरी हुई थी। वास्तव में इस कदम को उठाने का उद्‌देश्य विधानसभा चुनावों से पूर्व ही पंचायती राज चुनावों की प्रक्रिया को पूरा करना था ताकि दोनों के बीच किसी भी प्रकार के संभावित विरोध से बचा जा सके।

लेकिन पंचायती राज चुनावों के सम्बन्ध में जब सब कुछ सत्ताधारी दल की योजना के अनुरूप जी रहा था जब केन्द्रीय निर्वाचन आयोग ने बिहार और झारखण्ड के साथ–साथ हरियाणा में भी विधानसभा चुनाव करवाने की समय सूची घोषित कर दी जिसके अनुसार हरियाणा विधानसभा के चुनाव 3 फरवरी 2005 को निश्चित किये गये। चुनाव आयोग की इस घोषणा ने सत्ताधारी दल की कपटपूर्ण योजना पर पानी फेर दिया क्योंकि इसके साथ ही पंचायती राज चुनावों के सम्बन्ध में सभी तैयारियां ठप हो गई।

संक्षेप में हरियाणा में पंचायती राज चुनावों के दूसरे दौर के चुनावो के समय इण्डियन नेशनल लोकदल तथा भारतीय जनता पार्टी की सत्ताधारी गठबंधन अपनी सोची विचारी नीति के अनुसार इन चुनावों को स्थगित कर विधानसभा चुनावों के पश्चात् करवाने में रूचि रखता था। अतः इसने अपनी रणनीति एवं टालमटोल की युक्तियों से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें न्यायालय के पास पंचायत राज चुनावों को स्थगित करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा और इस प्रकार यह अन्ततः अपनी अहितकारी योजना में सफल हो गया। पुनः तीसरे दौर के चुनावों में तत्कालीन सत्ताधारी दल (संयोगवश वही जोकि द्वितीय दौर के चुनावो में गठबंधन का मुख्य घटक था) पंचायती राज चुनावों के समय सूची के साथ खिलवाड़ करते हुए इन चुनावों को समय से पूर्व एवं विधानसभा चुनावों से पहले करवाने में रूचि रखता था ताकि इसे परिकल्पनीय राजनीतिक लाभ प्राप्त हो सके। इसके लिए इसने हरियाणा पंचायती राज अधिनियम में संशोधन किया जिसका उद्‌देश्य पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों को इस ढंग से करवाना था जिससे सभी प्रजातांत्रिक सिद्वातों का घोर उल्लंघन होता हो। इसके साथ ही इसने चनुाव प्रक्रिया को पूरा करने में समय अवधि को कम करने का भी प्रयास किया। यह सभी तथ्य यह स्पष्ट करते है कि 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत ग्रामीण स्थानीय निकायों के निश्चित कार्यकाल के सम्बन्ध में किए गए पावन प्रावधानों का खुले आम उल्लंघन किया गया। इस प्रकार की विकृत घटना का उदय पंचायती राज संस्थाओं के स्वायत्त एवं प्रभावी स्वरूप के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। जोकि अभी भी राज्य स्तरीय नेताओं के हाथ की कठपुतली मात्र है।

संभव है कि यह स्वयं में एक मात्र मामला न हो अतः इस प्रकार की घटना के उदय की अन्य राज्यों में भी जांच की जानी चाहिए और यदि इस प्रकार की प्रकृति देश में अपने पांव पसार रही है तो निश्चित रूप से कुछ सुधारात्मक कदम उठाए जाने की आवश्यकता है जिससे कि स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के स्वायत्त एवं प्रजातांत्रिक स्वरूप को लुप्त होने से रोका जा सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. हरियाणा पंचायती राज अधिनियम
2. उपरोक्त ही
3. कुरूक्षेत्र, अंक – 10, पेज – 12
4. उपरोक्त ही
5. योजना अंक – 5, पेज – 20
6. उपरोक्त ही

***

वैश्विक परिदृश्य और मीडिया की अनिवार्यता

कु. ऋतु दीक्षित
एम.फिल्. (संस्कृत)
डी.ई.आई. (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा

'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीयों का उदारतम भाव है। इस भाव के पोषण में मीडिया की भूमिका अविस्मरणीय है। भले ही भावात्मक रूप से सम्पूर्ण विश्व एक कुटुम्ब न बन सका हो, क्योंकि कूटनीतिक सन्दर्भ एवं स्वार्थ तथा धार्मिक हठवादिता आदि कारणों से इसमें सतत बाधायें आती रही हैं, तथापि सम्पूर्ण विश्व को मीडिया ने प्रायः एक कुटुम्ब का रूप दिया है। सुख–दुःख के क्षण हों या प्राकृतिक आपदायें, वैज्ञानिक आविष्कार हों या अकादमिक उपलब्धियाँ, ओलम्पिक जैसे खेल–कूद हों या नोबल पुरस्कार, कला विधियों हो या फिल्म महोत्सव, सत्ता–परिवर्तन हों या व्यवस्था–परिवर्तन, सागर हो या अन्तरिक्ष, अण्टार्कटिका के पेंग्विन हों या अपरलोक के ऐलियन, हिम मानव हो या डायनासोर – मीडिया सब का चाक्षुश–प्रत्यक्ष करा देता है, वह भी तत्क्षण। इस प्रकार वैश्विक परिदृश्य के अवलोकनार्थ मीडिया की भूमिका एवं अनुकम्पा अनिवार्य है।

मीडिया ने वैश्विक परिदृश्य को जन–मन तक पहुँचाने का अभूतपूर्व कार्य किया है। विश्व की बड़ी से बड़ी घटनाओं का हमें पता ही नहीं लग पाता था, किन्तु आज अविलम्ब सारा घटनाक्रम सजीव रूप में (LIVE) हमारे सामने होता है। अमेरिका की 9/11 की घटना को मीडिया ने सजीव दिखाया इसी प्रकार सुनामी की विभीषिका को प्रत्यक्ष देखकर और ऐसी ही अन्यान्य हृदय विदारक घटनाओं को देखकर सम्पूर्ण विश्व एक सहानुभूति के सूत्र में आबद्ध हो गया। पीड़ित मानवता की सहायतार्थ सारे विश्व को प्रेरणा देने में मीडिया का अवदान सर्वविदित है। अनेक देशों के तानाशाही के विध्वंस और लोकतन्त्र की स्थापना के चमत्कारी दृश्य देखकर अनेक राष्ट्र अपनी मुक्ति हेतु आश्वस्त हो चले हैं। इस राजनीतिक चेतना का समग्र श्रेय मीडिया को ही जाता है।

आज मीडिया की सर्वव्यापक महत्ता संकीर्णता की श्रृंखलाओं को तोड़कर विश्वमानवतावाद की स्थापना का पथ प्रशस्त कर रही है। मीडिया की सभी विधायें वैश्विक परिदृश्य के समवेत प्रस्तुतीकरण में अहर्निष क्रियाशील हैं। वर्तमान युग सूचना का युग है। सूचनाओं के निरन्तर प्रेषण पर ही सारा संसार टिका है। सूचनाओं की इस कमी को पूरा करते हैं संचार माध्यम अर्थात् मीडिया। मीडिया व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है, समाज को समाज से जोड़ता है, देश को देश से जोड़ता है और परस्पर विचार–विमर्श के लिए आधारभूमि देता है। सुन्दर संसार के नकारात्मक मूल्यों को उजागर कर संसार को स्वच्छ छवि प्रदान करता है। यद्यपि आज कहीं–कहीं मीडिया की छवि नकारात्मक भी होती जा रही है और वह जनता की मनोवृत्ति को भी नकारात्मक करता जा रहा है। परिणाम यह है कि आज लोगों में अविश्वास, बिखराव, दुर्भावना, संकुचन और आलोचना की प्रवृत्ति घर करती जा रही है, तथापि इतना अवश्य है कि मीडिया का सकारात्मक दृष्टिकोण अधिक मुखर और प्रभावशाली है। जीर्ण–शीर्ण

परम्परायें और अच्छे–बुरे लोग तो हर क्षेत्र में मिलते हैं। मीडिया का क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। अस्तु, वैश्विक परिदृश्य के सन्दर्भ में तो मीडिया एक समर्थ माध्यम की अनुभूति सतत करा रहा है।

सभ्यता के विकास के साथ–साथ पत्रकारिता और मीडिया के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी विकास हुआ है। आज मुद्रित एवं इलैक्ट्रोनिक–दोनों रूपों में मीडिया के विकास ने सम्पूर्ण विश्व को न केवल एक कर दिया है, अपितु बहुत ही गहरे से जोड़ भी दिया है। कम से कम सूचना–विज्ञान के क्षेत्र में तो जैसे विस्फोट ही हो गया है। ऐसी स्थिति में वैश्विक परिदृश्य को हस्तामलकवत् प्रस्तुत करने में मीडिया की भूमिका सरल और महत्वपूर्ण हो गयी है। निःसंदेह, मीडिया मनुष्य, समाज, सभ्यता और राष्ट्र के विकास के साथ–साथ वैश्विक विकास का भी सूत्रधार है। यह एक धर्म है। यह सत्ता और प्रभुत्व प्राप्ति की सनक नहीं है, बल्कि एक अनुष्ठान है और इसमें निहित है समाज के एक सच्चे और अच्छे दोस्त की भूमिका। मीडिया की भूमिका कठिन नहीं, आसान है, क्योंकि इसमें कर्म के सौन्दर्य हैं, नित नये सृजन की आत्म–सन्तुष्टि है। वे सचमुच खुशकिस्मत हैं, जो कर्म के इस रचनात्मक दायित्व से जुड़ते हैं।[1] यही नहीं, आज मीडिया को अपना कैरियर बनाना युवावर्ग की वरीयता–सूची में प्राथमिकता पर है।

मानव इस सृष्टि का सर्वाधिक विकसित प्राणी है। इसीलिए उसके लिए संचार का विशिष्ट महत्व है। लक्ष्मेन्द्र चोपड़ा के भाब्दों में– "मनुष्य की विशिष्ट जैविकीय रचना, विचार–प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक गुणों के सम्मिश्रण ने उसकी संचार–शक्ति को अभूतपूर्व विकास का वर्तमान प्रारूप प्रदान किया है। मनुष्य ने इन्हीं क्षमताओं के कारण संचार की सैद्धान्तिक प्रक्रियाओं को न केवल स्थापित किया, बल्कि उन्हें प्रायोगिक रूप देकर उन संचार–माध्यमों को भी खोज लिया, जिनके कारण आज की दुनिया एक विश्व–ग्राम में बदल गयी है।"[2]

सन् 1702 ईसवी में लंदन में प्रथम नियमित समाचार पत्र 'डेली काउन्टेन्ट' के प्रकाशन से प्रारम्भ होकर समाचार पत्रों की ऐसी विकास–परम्परा चली कि आज विश्व में 37,250 से अधिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रस्तुत हैं। भारत में दैनिक समाचार पत्रों की संख्या 4,236 से भी अधिक है। इस रूप में प्रिंट मीडिया ने विश्व–वैभव को समर्थ अभिव्यक्ति और संरक्षण प्रदान किया है। संचार की विकास–यात्रा में तीव्रता इलैक्ट्रॉनिक जन–संचार माध्यमों– रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, ई–मेल, सैल्युलर आदि के आविष्कार और उपयोग से आयी, वह भी अप्रत्याशित और कल्पनातीत। इस विकास–यात्रा में सैटेलाइट की उपयोगिता, महत्ता एवं योगदान को रेखांकित करना अपरिहार्य है। टेलीस्टार पहला संचार सैटेलाइट था, जिसके द्वारा 10 जुलाई, 1962 को सर्वप्रथम टैलीविजन चित्र भेजे गये। 2 मई, 1965 को संसार के प्रथम व्यवसायिक संचार सैटेलाइट 'अली वर्ड' द्वारा नियमित टेलीविजन प्रसारण प्रारम्भ हुआ। मल्टी मीडिया, कम्प्यूटर, इण्टरनेट के विकास और उपयोग ने संचार की कंदराओं से उत्पन्न हुयी विकास–यात्रा को मुक्त आकाश तक तो पहुँचाया ही, उसे व्यापक, विशिष्ट और वैश्विक भी बनाया।[3] भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) का इस क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण स्थान है। इस संगठन की INSAT–1 तथा INSAT–2 सैटेलाइट्स सेवा तो मीडिया के लिए वरदान

ISSN 2277-5587

सिद्ध हुयी हैं। निस्सन्देह, वैश्विक परिवेश को ग्रहण करने में उक्त तकनीक का अनुपम योगदान है।

निष्कर्षतः, सम्पूर्ण विश्व की परिवर्तनशीलता की पल–पल की और कोने–कोने की पकड़ आज मीडिया के हाथ में है। कितनी ही सत्ताओं, तानाशाहियों, राजमुकुटों को हमने धूल धूसरित होते प्रत्यक्ष देखा है। लीबिया, मिस्र, यमन, नेपाल जैसे देशों के परिवर्तनों का एक–एक पल पूरे विश्व ने जिया है। मानवता के घातक वृत्तों को देख–सुन–पढ़कर सारा विश्व एक साथ आहत हुआ है और मानव मूल्यों के श्रृंगार करने वाले घटनाक्रमों पर भाव–विभोर भी हुआ है। सचमुच, वैश्विक परिदृश्य के लिए मीडिया की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सहारा समय, 17 मई, 2003।
2. लक्ष्मन्द्र चोपड़ा : जन संचार का समाजशास्त्र, पृ0 20।
3. डॉ0 चन्द्र प्रकाश मिश्र : मीडिया लेखन, सिद्धान्त और व्यवहार।

***

Volume - II January - March 2012 ISSN 2277-5587

Mobile banking - An Insight and Indian Perspective

Dr. Vikas Bairathi
Assistant Professor, Dept. of EAFM,
S.S. Jain Subodh PG College, Jaipur
Ms. Jaya Bairathi
Department of Management
Rajasthan Swayat Shasan Mahavidyalaya, Jaipur

The rapid spread of the “mobile phone” has helped banks use this mode for transactions. Mobile Banking can be used for small value payments at relatively lower costs and therefore is being used in many developing countries as a delivery channel to facilitate financial inclusions. Mobile Banking refers to provision and availment of banking- and financial services with the help of mobile telecommunication devices. The scope of offered services may include facilities to conduct Bank and stock market transactions, to administer accounts and to access customized information.

Mobile Banking, as defined above, includes a wide range of services. These services may be categorised as following [Georgi/Pinkl, 2005, p. 57]:

1. Mobile Accounting

Georgi/Pinkl [2005, p. 57] define Mobile Accounting as transaction-based banking services that revolve around a standard bank account and are conducted and/or availed by mobile devices. Not all Mobile Accounting services are however necessarily transaction based. Mobile Accounting represents basically that part of Mobile Banking which deals with utilising account-specific banking services of non informational nature via mobile telecommunication devices. Mobile Accounting services may be divided in two categories to differentiate between services that are essential to operate an account and services that are essential to administer an account. Additionally, services are required that inform a customer of transactions and other activities involving his or her account. It is for this reason that Mobile Accounting is offered almost invariably in combination with services from the field of Mobile Financial Information.

The term *Account Operation*, refers to activities that involve monetary transactions. Such transactions may involve an external account, e.g. when paying bills, or an internal (sub-) account, e.g. when transferring money from own savings account to own securities account held with the same bank. The term *Account Administration*, refers to

activities that are undertaken by an account-holder to maintain his or her account. This may involve activities like access administration and cheque book requests.

2. Mobile Brokerage

Brokerage, in the context of banking- and financial services, refers to intermediary services related to the stock exchange centre, e.g. sell and purchase of stocks, bonds, funds, derivatives and foreign exchange among others. Mobile Brokerage, thus, refers to mobile financial services of non informational nature revolving around a securities account.

3. Mobile Financial Information

Mobile Financial Information refers to non-transaction based banking- and financial services of informational nature [Georgi/Pinkl, 2005, p. 57].

This sub-application may be divided into two categories:

1. Account information
2. Market information.

Information services are an integral part of Mobile Accounting and Mobile Brokerage but can also be offered as an independent module, i.e. Mobile Financial Information can be offered without providing Mobile Accounting or Mobile Brokerage but *vice versa* is not feasible. Mobile Financial Information services are generally provided by credit institutions and financial services institutions. However, there are other enterprises too that do not belong to either of this category but still provide market information via mobile devices.

Mobile Banking in India

Mobile Banking is however in its nascent stage in Indian banks. The pace of technology advancement services in the Indian banking sector is in its full swings, but the adoption rate of these services has been found to be much below its expectations.

RBI provided guidelines for mobile banking transactions in India in October 2008.The salient features of these guidelines are :

1. Banks have to obtain RBI approval for providing Mobile Banking facility to the customers

2. The facility can be provided only in Indian rupees to the banks own customers, or holders of Debit/credit cards.
3. Banks should adhere to prescribed technology and security standards and limits set.

The guidelines also mandate interoperability among service providers, so that the monopolistic practices by a few providers are avoided.

Features of Mobile Banking in few Indian banks are cited below.

- *ICICI Bank*-the bank views mobile phone as banking assistant to their customers. The bank provides an array of services ,be it simple SMS alerts, service requests using Instant Messaging, the iMmobile applications .The customers can use mobile phones to check account balances, transfer of funds and customers can buy flight and movie tickets and also shop for apparels, books and flowers.
- *Punjab National Bank* provides SMS alerts services on identified financial transactions (facility being availed by 21 lac customers in the year 2010-11).The channel was leveraged for providing information on banks products and services over SMS under the SMS Pull mechanism. The mobile banking services launched in 2010 has added value to the channel as the users can also make payments of utility bills /services using their mobile phones, besides effecting transfer of funds to third party accounts.
- *Oriental Bank of Commerce* offers balance inquiry, Intra Bank funds transfer, Inter-Bank funds transfer etc. through mobile banking.
- From the above examples it is quite evident that Indian banks have not been able to tap the potential of Mobile Banking to its fullest, the need of the hour is to realize it and fill this gap with suitable measures.

Suggestions

Having examined the technical composition of current Mobile Banking services, following suggestions are given on the usefulness of Mobile Banking from the banks' perspective. These suggestions provide banks with very concrete grounds to indulge in Mobile Banking for reasons, both, operational and strategic.

1. Mobile Banking as Distribution Channel

Mobile Banking enhances the number of existing channels of distribution that a bank employs to offer its services. The term 'distribution channel' hereby signifies a medium of delivery that a vendor employs to deliver his products or services to customers. Other distribution channels in the banking sector include branch offices, Internet Banking and Telephone Banking. One of the primary tasks of a distribution channel is to increase the volume of demand for products at profitable prices [Luber, 2004, p. 142]. This objective is achieved by increasing operational efficiency so that those losses in the sales are minimised that are caused by delays in catering to customer orders. Further, a favorable reputation of the firm's logistical capacities may help generate additional orders.

2. Increasing customer satisfaction

Mobile Banking may help a bank increase the customer satisfaction ratio by adopting the following means [Luber, 2004, pp. 146-148]:

- Streamlining of business processes to increase efficiency;
- More attention and better consulting for individual customers due to automation of routine processes

3. Mobile Banking as Source of Revenue

Mobile services can be offered on a premium basis. The price, in this case, should be reasonable enough so that customers are willing to pay them but at the same time they should be from a financial point of view higher than the costs incurred by the bank.

4. Mobile Banking as Image Product

Mobile Banking can be also used as an image product to gain strategic advantages. The bank may hope to win or retain a positive image amongst technology-savvy sections of the society and strengthen the brand reputation of being innovative and visionary [Georgi/Pinkl, 2005, p. 60]. The image of being a technology leader can help the bank win customers who are looking for modern products and services and at the same time help it retain its own existing base of technology-savvy customers, some of whom otherwise might have switched to other banks

while looking for such a product. Further, the bank can profit from an early-mover advantage by actively shaping technological standards that are based on one's own strengths. Negative fallout of following already-set standards may be thus avoided. This is, of course, fraught with a substantial risk of incurring financial and image losses if the propagated technology fails to establish.

Conclusion

Mobile Banking is definitely the latest and most innovative technology which will help the banks to master the combination of opportunities and challenges. Banks need apart from business consolidation and cooperation organic growth. It is, thus, necessary to retain the existing customer base while simultaneously trying to acquire new, economically prosperous and technosavvy customers. Seen in conjunction with the price-sensitivity of customers and the resultant low relevance of the brand-name banks are compelled to introduce innovative services that potentially attract prospective customers while retaining others.

The Indian Banks have a long way to go for widespread adoption of Mobile Banking. The banks need to be aware of problems of their customers using mobile services. Information gained from experience with internet banking and other modes of electronic banking can provide a base in understanding customers' needs.

References

1. Suresh P and Paul Justin(2010), Management of Banking and Financial Services, 2nd edition, Pearson, New Delhi.
2. Iyengar Vijayaragavan G.(2008),Introduction to banking,Excel Books, New Delhi.
3. Tiwari Rajnish and Buse Stephan, The Mobile Commerce Prospects: A Strategic Analysis of Opportunities in the Banking Sector, Hamburg University Press
4. The ICFAI Journal of Bank Management, Hyderabad
5. Annual Report-ICICI Bank (2010-2011)
6. Annual Report-OBC
7. Annual Report-PNB
8. www.iibf.org.in
9. www.idrbt.ac.in
10. www.iba.org.in

***

Volume - II January - March 2012 *ISSN 2277-5587*

A REFLECTION OF INDIAN WOMEN IN ENTREPRENEURIAL WORLD

Deepshikha Parashar
Asst. Professor, Dept. of Political Science
IIS University Jaipur

The emergence of women entrepreneurs and their contribution to the national economy is quite visible in India. The number of women entrepreneurs has grown over a period of time, especially in the 1990s. In the era of Liberalization, Privatization and Globalization along with ongoing IT revolution, today's world is changing at a surprising pace. These changes have created economic opportunities for women who want to own and operate businesses. Due to the growing industrialization, urbanization, social legislation and along with the spread of higher education and awareness, the emergence of Women owned businesses are highly increasing in the economies of almost all countries. Today, women entrepreneurs represent a group of women who have broken away from the beaten track and are exploring new avenues of economic participation. Among the reasons for women to run organized enterprises are their skill and knowledge, their talents, abilities and creativity in business and a compelling desire of wanting to do something positive.

Concept of "Women" as an entrepreneur in India:

Entrepreneurship has gained currency across the sphere and female entrepreneurship has become an important module in India. "Women Entrepreneurship" means an act of business ownership and business creation that empowers women economically increases their economic strength as well as position in society. However, Government of India has given a broader definition of the term women entrepreneur. It defined women entrepreneur as "an enterprise owned and controlled by women having a minimum financial interest of 51% of the capital and giving at least 51% of the employment generated in the enterprise to women"

Change in Position of women in last five decades:

- In the words of Former President **APJ Abdul Kalam** "empowering women is a prerequisite for creating a good nation, when women are empowered, society with stability is assured. In India, though women have played a key role in the society, their entrepreneurial ability has not been properly tapped due to the lower status of women in the society. It is only from the Fifth Five Year Plan (1974-

78) onwards that their role has been explicitly recognized with a marked shift in the approach from women welfare to women development and empowerment.

- In fifties compulsive factor led to the creation of women entrepreneurs
- In sixties women began to aspire but also accepted the social cultural tradition. **women have started entrepreneurial activities as one- woman enterprises at home and from home for self-occupation and engagement**.
- In seventies women opened new frontiers. They had not only aspirations but ambitions also. Women are encouraged to start an occupation or venture with an urge to do something independently started to tide over their economic difficulties and responsibilities.
- In eighties women were educated in highly sophisticated technological and professional qualification. Government and non-government bodies have paid increasing attention to women entrepreneurs through formulation of various policies and programmes and introduction of new schemes and incentives. It adopted a multi-disciplinary approach for development of women entrepreneurs.
- In nineties the best rather than male heir was talked about. Out of the total women population of 437.10 millions, there are 126.48 million women workforce of which only 1, 85,900 women accounting for self employed in the country. This indicates a dismally low level of women participation in the entrepreneurial activities.
- In 21st century women are Jill of all trades.

Since the **21st century**, the status of women in India has been changing as a result to mounting industrialization and urbanization and social legislation. With the spread of education and awareness, women have shifted from the kitchen, handicrafts and traditional cottage industries to non-traditional higher levels of activities. The Government has also laid special weightage on the requirement for conducting special entrepreneurial training programs for women to enable them to start their own ventures. Financial institutions and banks have also set up particular cells to help women entrepreneurs.

Role of entrepreneurship in economy-

Women Entrepreneur has been recognized during the last decade as an important untapped source of economic growth. The development of Women Entrepreneurship will also contribute in many things such as

a. increasing opportunities for employment (comprising various competitive skill sets);

b. additional wealth creation;

c. introduction and dissemination of new methods and technology; and

d. overall economic growth.[2]

As such, the development of Entrepreneurship in a particular milieu depends not on a single overriding factor but rather on 'a constellation of factors' at the individual, societal and national levels.[3]

Problems and Solutions of women Entrepreneurs in India

Women in India are faced many problems to get ahead their life in business. A few problems can be detailed as;

a) Lack of confidence – In general, the family members and the society are reluctant to stand beside their entrepreneurial growth. To a certain extent, this situation is changing among Indian women and yet to face a tremendous change to increase the rate of growth in entrepreneurship.

b) Socio-cultural barriers –Socio-cultural factors such as social norms, family values, networks and social value of Entrepreneurship, play a key role in nurturing the entrepreneurial ecosystem.[4] A historical and sociological understanding of certain communities in India, which have been traditionally engaged in business, confirms the role of social factors that encourage entrepreneurship.

c) Market-oriented risks – Stiff competition in the market and lack of mobility of women make the dependence of women entrepreneurs on middleman indispensable. Many business women find it difficult to capture the market and make their products popular. They are not fully aware of the changing market conditions and hence can effectively utilize the services of media and internet.

d) Motivational factors – Self motivation can be realized through a mind set for a successful business, attitude to take up risk and behavior towards the business society by shouldering the social responsibilities. Other factors are family support, Government policies, financial assistance from public and private institutions and also the environment suitable for women to establish business units.

e) Knowledge in Business Administration – Women must be educated and trained constantly to acquire the skills and knowledge in all the functional areas of business

management. This can facilitate women to excel in decision making process and develop a good business network.

f) Awareness about the financial assistance – Various institutions in the financial sector extend their maximum support in the form of incentives, loans, schemes etc. Even then every woman entrepreneur may not be aware of all the assistance provided by the institutions. So the sincere efforts taken towards women entrepreneurs may not reach the entrepreneurs in rural and backward areas.

g) Exposed to the training programs - Training programs and workshops for every type of entrepreneur is available through the social and welfare associations, based on duration, skill and the purpose of the training program. Such programs are really useful to new, rural and young entrepreneurs who want to set up a small and medium scale unit on their own.

h) Identifying the available resources – Women are hesitant to find out the access to cater their needs in the financial and marketing areas. In spite of the mushrooming growth of associations, institutions, and the schemes from the government side, women are not enterprising and dynamic to optimize the resources in the form of reserves, assets mankind or business volunteers.

Empowering women entrepreneurs is essential for achieving the goals of sustainable development and the bottlenecks hindering their growth must be eradicated to entitle full participation in the business. Apart from training programs, Newsletters, mentoring, trade fairs and exhibitions also can be a source for entrepreneurial development. As a result, the desired outcomes of the business are quickly achieved and more of remunerative business opportunities are found. Henceforth, promoting entrepreneurship among women is certainly a short-cut to rapid economic growth and development. Let us try to eliminate all forms of gender discrimination and thus allow ‘women’ to be an entrepreneur at par with men.

Supportive Measures for Women’s Economic Activities and Entrepreneurship :-

Direct & Indirect Financial Support, i.e. Nationalized banks, State finance corporation, State industrial development corporation, District industries centers, Differential rate schemes, Mahila Udyug Needhi scheme, Small Industries Development Bank of India (SIDBI), State Small Industrial Development Corporations (SSIDCs)

Various Yojna Schemes and Programme, like - Nehru Rojgar Yojna, Jacamar Rojgar Yojna, TRYSEM, DWACRA, etc.

Many Technological Training and Awards, viz - Stree Shakti Package by SBI, Entrepreneurship Development Institute of India, Trade Related Entrepreneurship Assistance and Development (TREAD), National Institute of Small Business Extension Training (NSIBET), Women's University of Mumbai

Several Federations and Associations as - National Alliance of Young Entrepreneurs (NAYE), India Council of Women Entrepreneurs, New Delhi, Self Employed Women's Association (SEWA), Association of Women Entrepreneurs of Karnataka (AWEK), World Association of Women Entrepreneurs (WAWE), Associated Country Women of the World (ACWW) are providing adequate support for women entrepreneurs in india.

Conclusion

Independence brought promise of equality of opportunity in all sphere to the Indian women and laws guaranteeing for their equal rights of participation in political process and equal opportunities and rights in education and employment were enacted. But unfortunately, the government sponsored development activities have benefited only a small section of women. The large majority of them are still unaffected by change and development activities have benefited only a small section of women i.e. the urban middle class women. The large majority of them are still unaffected by change and development The specific obstacles to Women Entrepreneur are: type of education, gendering of Women Entrepreneurship, weak social status, competing demands on time and access to finance. Entrepreneurship among women, no doubt improves the wealth of the nation in general and of the family in particular. Women today are more willing to take up activities with respect to contribution to the growth of the economy. Women entrepreneurship must be moulded properly with entrepreneurial traits and skills to meet the changes in trends, challenges global markets and also be competent enough to sustain and strive for excellence in the entrepreneurial arena.

REFERENCES

1. Schemes and Programmes of Ministry of Small Scale Industries and Ministry of Agro & Rural Industries, Govt. of India
2. Coughlin Jeanne Halladay & Thomas Andrew – The rise of Women Entrepreneurs: People, processes, and Global trends (2002)

3. Association of Women entrepreneurs of Karnataka - http://www.awake-india.org

4. Taori , Dr. Kamal - Entrepreneurship in the Decentralized Sector

5. Mahanty Sangram Keshari – Fundamentals of Entrepreneurship – Prentice Hall of India Jose P., Ajith Kumar. & Paul T.M., (1994) Entrepreneurship Development, Himalaya Publishing

6. Medha Dubhashi Vinze (1987) Women Entrepreneurs In India: A Socio-Economic Study of Delhi - 1975-76, Mittal Publications, New Delhi.

7. Renuka V. (2001) Opportunities and challenges for women in business, India Together, Online Report, Civil Society Information Exchange Pvt. Ltd.

8. Starcher, D. C. (1996). *Women entrepreneurs: Catalysts for transformation*. Retrieved July 6,2001:http:// www.ebbf.org / woman.htm[10] (c20012695[11])

9. Dwijendra Tripathy (ed.) ‘Business Communities of India: A Historical Perspective’, 1984,.

***

Volume - II January - March 2012 *ISSN 2277-5587*

Water Harvesting and Conservation : A Study of Medieval Times

Dr. M.L. Sharma
Head - Deptt. of History
S.D. Govt. Collage, Beawar

Mrs. Bindu Tiwai
Lecturer in History
S.D. Govt. Collage, Beawar

Our ancient Indian scriptures decribe Indira as God of rain and worship him consider our rivers as pious and sacred and worship them as Goddesses. The tradition has been followed all throught the different eras and ages. The medieval times reflect the same gists and gestures regarding consrevation and harvesting of water bodies. Medieval emperors came from middle east and were very fond of running water, canals, gardens and fountains but they could not ignore indegenous water conservation system and developed baoris wells and talabs to full fill the need of drinking water.

A study of medieval times water has been harvested in India since antiquity evidence of this tradition can be found in ancient texts, inscriptions, local traditions and archaeological remains the medieval India was not only urbanised but also had a highly developed trade and agriculture industry and it was all possible due to a well organised and highly developed irrigation system.

Medieval period of the indian history is considered to begin from 1206 A.D. sultan of various dyanasties ascended the throne of delhi. Before the Mohammedan's Dilli was ruled by the Rajput King and they had proper water system in their capital. The Tomar king Anangpal's city Dilli was near the present Suraj Kund in Haryana.[1] It was probably occupied for about a century when the city was move to the qutab the reason for choice of this site is the country around is very rocky and barren and very hot in the summer. There is little water but it is also very good from defence point of view. Anagpal chose this site because it was very strong and out of the way, and so he hoped that he would be safe from Mahmmud of Ghazni.[2] In time of terror and war the king was aware of the need of water. He constructed a great tank of Suraj Kund it is a great semi circle of Masonry. There are steps all round in semicircle. In the middle of straight side are the steps of a large building this was a temple of surya, which, gives its name to the tank.

In, hilly area on the natural lake he made a bund with gate way. This gate could be opened or shut, and so the flow of water was regulated. He constructed wells inside the capital. The Narrow valley open out and forms a circular plain or basin in the hills. In the plains there was a great lake in the times of Anagpal. The supply of water to the city during the summers was through this lake.[3]

Iltutmush (1210-1236) established his capital at the high altitude of Meharuli so it was difficult to construct any sort of canals from yamuna to provide adequate water supply, there for the sultan built *Hauz-e-sultani* as catchment reservior to preserve rain water, so that it could solve the drinking water problem of the city. *Gandhak Ki Baodi* was also built during iltutmushi's reign and its water is used to fullfill other need such as washing and bathing to even in present time. Kaikubad the son of Balban constructed large tank at kalugarhi near Delhi.[4]

In the plains of Siri Alauddin Khilji constructed a resevoir. This resevoir was also built to harvest the waters of Aravalli hills and had a catchment area of 24; 29 hectares. The resevoirs measured 600m by 600m and was named *Hauz-e-Khas.*[5] It was so large that a man cannot shoot an arrow across it. Firoz Shah Tughlaq repaired and established a madarsa on its bank. In old days the tank was filled during the rains and it must then have been a very fine sheet of water. Probably *Hauz-Khas* was neglected in the troubles after Timur's invasion. It has never been used since then.[6] Today *Hauz-Khas* is a metro station of Delhi.

Ghiyas-us-din Tughlaq (1326-25 AD) settled his capital 8 km to east of Qutab Minar the site was closer to yamuna but the Sultan chose a rocky terrain, keeping in need to fortyfy the palace. The Tughlaqabad fort contains ruins of seven water tanks and three extensive baodies, beside numerous deep wells. At the time of Ghiyas-ud-din the surplus water from the resevoirs *Hauz-e-shamshi* was diverted to the *Naulakhi-nullah* and this canal was diverted to Tughlqabad to provide water to commoners.[7]

Ghiyas-ud-din Tughlaq was the first sultan of delhi who thought of opening canals and commenced spade work in that direction.[8] Early death of tughlaqshah was a set back to his irrigation schemes of opening the canal system from Ganga nd yamuna.[9]

Muhammad-bin-Tughluq (1325-51) constructed the artificial lake and *Satpula*. Satpula located near saket its seven principal spans were sluices that controlled the water in an artificial lake. At each end of the dam is a tower, which was built for the maintenance

 ISSN 2277-5587

of the dam. The double storey structure is a remarkable specimen of the spohisticated water resource technology that then existed. The storeys perform seprate functions the upper storey has gates which could be opened when the water was above danger level.[10] The lower storey maintained the standard storage capacity. Muhammadbin Tughlaq like his father was equally keen to develop the means of irrigation and invented many schemes called *uslubs* to promote agriculture. It these *uslubs* become reality, there is no doubt that agricultural prosperity in those days would have become reality.[11]

Muhammad bin Tugulaq was very keen to develop agriculture. At the time of Muhammad-bin-Tughlaq wells were probably the major source of artificial irrigation is most areas. Tughlaq gave advanced loans to peasents for digging wells in order to extend cultivation. Firoze shah constructed for major canals first Satlaj to Jhajahr (a town in Rohtak distirict) a distance of ninty six miles. The second canal sirmur hills to hansi, where he built new town Hissar Firozah, the third canal was dugout from Ghaggar; the fourth canal was constructed from yammuna.[13] Besides these large canals there were a number of smaller canals which have been dug and maintained by local administration.

The sultan charged *Haq-i-Sharb* from the inhabitants of the canal irrigated areas.[14] The income goes to the sultans's personal account which was further used for the maintenance of the water bodies and religious divines. Well planned irrigation system brought barren lands under cultivation. He developed many fruit gardens also. His policy brought prosperity in the state revenu. Famiine and scarcity had beome the things of the past. Firozeshah repaired the tank *Hauz-e-sultani* and *Hauz-i-Khas*.

Lodi Sultans were not behind to construct water bodies. Lodi's maintened and followed the tradition of Tughlaq's Sikandar Lodi constructed the well called Chahi-Khas and Basti Baodi, Rajon-Ki Baodi also constructed in Lodi regime. During the period of Sultanant many boaris were built in the other parts of the city to fullfill the need of drinking water these baodies were secular structures from which every one could draw water.

Palam baodi, uaggrsen boadi and sultanpur baodis have dried up and only their structures remain to day. The founder of Mughal empire Babur had expressed dissatisfaction with the absence of artificial water cannals in India.[16] But Babur could not ingnore the utility of wells and baories even he was very found of runing water and garden. He him self constructed octangle tank and garden during hs stay in Dholpur. He built a rock cut beautiful Hauz near chousa the Hauz filled by the train water comes from the surrounding hills. In Agra he constructed a beautiful baori near Lodis palace.

 ISSN 2277-5587

Akbar constructed many baories and laying out of gardens included, the renovation of old water works in delhi and other parts of the empire. In the new capital Fathepur Sikri Akbar Constructed a large lake (Which was filled by the water of Khari river) and a dam to provide drinking water for the inhabitants. Near Agra he constructed many baories and wells Dera and ladli garden's well were constructed in his regime forty three wells and one sixty three tanks were found in and around Agra. In Fatehpur Sikri Akbar built several baodies of which the two most important and largest ones the northen water works and the southern water works from these baodies water was raised several stages up to the top level by th means of persian wheels, installed in the side chambers of the well drawn by bullocks. The water was stored in to over head storage tanks whence it was finally lifted up by mnnual efforts to be drained in to chennels which carried the water into the different parts of the complex.[17]

During his stay in Ajmer Jahangir is said to have reconstructed the dam on the Nil Tal in 1616 A.D. which collapsed long back. He also appreciated the beauty of the valley and spring at Taragarh a palace and one big resevoir constructed there it name *Chashma-i-Nur*.[18]

Emperor Shahjahan (1627-58 A.D.) made sufficient arrangements to meet the water needs of the new palace, the army and the common people. His system of *Shah Jahani* canals and *dighis* was probably the best creation of the times. Shahjehan reconstructed and realigned the Jamuna canal, built by Feroze Shah Tughlaq and succeaeedd in bringing Jamunna's water up to delhi and re named it as *Nehre-i-Bhisthi.*[19] *Nehrre-i-Faiz* was also constructed by him. In the main city the canal charged *dighis* and wells. People were free to take water for personal use. People generally hired a *Khar* or a *Mashki* to dran water from dighis in the event of canal water not raching the twon and *dighis.*[20] Consequently running dry, well were the main source of water. In rural areas also wells were the main source of the drinking water. Aurangjeb constructed many wells in his state big canal *Nahr-i-azim* excavated in his times.

In medieval period all king's nobles has taken keen intrest to provide drinking water for their subjects Mughal Emperors were very conscious of good and pure water Akbar established a seperate department for drinking water *Abdar Khana*.[21] Akbar called water "the source of life" (Ab-i-Hayat).

Thus all medieval kings and nobles took keen interest to develop irrigation system as well as water conservation from traditional methods. In present days also if we develope the indegenious system we will be able to slove our water problem.

References

1. Agarwal Anil and suntia Narayan - Dying Wisdom, Centre for Science and Environment Delhi 2005, page no. 74, 75.
2. S.K. Bashi and S.P. Sharma - Delhi Through Ages, Anmol Publication New Delhi 1995, Vol.-II, page no. 92, 93.
3. Ibid, Vol.-II, page no. 93.
4. Maulvi Zafar Hassan (Compiled by) edited by J.A. Page - Movements of Delhi Lasting splendour of the great Mughals and other, Aryan books international publication, Delhi - 2008, page Vol.- III, page no. 88.
5. Ibid, page no 76.
6. Ibid, page no. 86, 87.
7. Ibid, page no. 76.
8. R.C. Jauhri - Firoze Tughlaq, ABS Publication Delhi, 1990, page no. 104.
9. Ibid, page no. 105.
10. Barni - Twariq-A-Firojshahi, page no. 296, 297.
11. Barni - Twariq-A-Firojshahi, (see R.C. Jauhari)
12. Ibid, page no. 104, 105.
13. Tapan Roy Choudhary & Irfan Habib - Cambridge Economic History of India, Cambridge University Press 1982, Vol. I, Page no. 48, 49.
14. Ibid, page no. 105.
15. Ibid, page no. 75.
16. Baburnama (Eng. Tr.) A.S. Beveridge, Vol. - II, page no. 487.
17. E.W. Smith - Fathepursikri, being the A.S.I. Report N.W. provinces part III, S.A.A.
18. Harbilas Sarda - Ajmer Historical nad descriptive, Book Treasure Jodhpur, 2004, page no. 134.
19. Muhammad Waris - Badshahnama (Transcript, Deptt. of History, Aligarh) Vol. I, page no. 39, 40.
20. Ibid, page no. 76, 77.
21. M. Javed Akhtar - "Merchants and Urban Property", A study of cambay documents of 17^{th} - 18^{th} centuries, being presented at 49^{th} session of I.H.C. at Dharwar, 1988.

***

Volume - II January - March 2012 ISSN 2277-5587

INDIAN DEMOCRACY : REALITY AND CHALLENGES

Dr. Ajay Vardhan Acharya
Assistant Regional Director
Regional Center, Jodhpur (IGNOU)

Democracy is a form of government in which people are governed by their own elected representatives. It is a government of the people, for the people and by the people. In this system of government, it is the people who are supreme and sovereign. They control the government. They are free to elect a government of their own choice. Freedom of choice is the core of democracy. Democracy existed in ancient Greek and Roman republics but with little success. It had very little scope in ancient India. Democracy entered its golden stage in he twentieth century. Many countries in the world today follow the democratic form of government.

Indian is the largest democracy in the world. The Constitution of Indian was enforced on 26 January, 1950. It ushered in the age pf democracy. India became a democratic republic infused with the spirit of justice, liberty, equality and fraternity. The Preamble, the Directive Principles of State Policy and the Fundamental Rights reflect the Indian ideology as well as the caste, creed, religion, property, or sex have the right to cast their vote. After and election, the majority party or coalition forms the government and its leader become the Prime Minister.

We enjoy every right in theory, but not in practice. real democracy will come into being only when the masses are awakened and take part in the economic and political life of the country. There is inequality in every sphere- social, economic and political. Illiteracy is the main cause of inequality. The illiterate masses get easily lured by money during such an event. Also some of our legislators have criminal records against them. The people who make the laws themselves break them. Even after more than sixty years of Independence, one forth of the population today goes to bed with an empty stomach, live below the poverty line without access to safe and clean drinking water, sanitation or proper health facilities. Governments have come and gone, politics have been framed and implemented, crores of rupees have been spent, yet many people are still struggling for existence.

OVERPOPULATION

India is the second most populated country on this planet and is on it's way to being number one within the next fifty years. The government is very concerned about the

size of India's population and has focused tremendous amounts of energy into combating India's growth. They feel this is the best way to deal with India's high poverty rate (35%). However, the methods that the government has taken on curbing growth rates has raised some concerns. Greg Bokan's page will give an in-depth look at several of controversies that have developed around India's population control policies, and their effectiveness.

In effect, India is like a nation of bonded labourers with no recourse. The exploitation of this nation is inevitable given the circumstances however unfair it may appear to be. It is unfair that 20 percent of the world's population consumes 80 percent of the world's resources. It is unfair that India with 16 percent of the global population uses only 3 percent of its resources. But who is responsible for this imbalance and who are we going to complain to? Unfortunately, we have no one to thank but ourselves for the situation that we find ourselves in.

ENERGY CRISIS

India has a total installed capacity of about 100,000 MW of which, roughly 70% comes from Thermal Power Plants. There are three types of generation techniques under the head 'Thermal': Coal Based , Gas Based and Diesel Based. As can be seen in the pie chart, coal-based power plants have a share of about 60% and are the biggest contributors to the power supply in India.

THE CRISIS:

According to a report filed by the Ministry of power with the Prime Minister's office (as an SOS call), out of the total 75 coal based power plants in the country: 22 had less than 7 days stocks left and 6 had less than 4 days stocks left.

Therefore, almost 50% of the coal-based power plants were experiencing critically short supplies. The seriousness of the situation can be ascertained from the wordings of the report, which says the situation is “ALARMING” and needs to be redressed on “WAR FOOTINGS”. So, it is clear that we do have a crisis at hand. So, what is the government doing about the coal shortage?

AGRICULTURAL CHALLENGES:

Problems faced by Indian Agriculturist

1. Lack of education and awareness about opportunities.

2. Lack of Market Knowledge and Marketing skills.
3. Lack of professionalism and small land holding.
4. Absence of innovative financing for agriculture.

An empowering approach to poverty reduction needs to be based on the conviction that poor people have to be both the object of development programmes and principal agency for development. Our experience shows that when poor people are associated with public programmes, they have consistently demonstrated their intelligence and competence in using public funds wisely and effectively.

Our Constitution is committed to two different set of principles that have a decisive bearing on equality. **First**, is the principle of equal opportunities to all and the **second**, the principle of redress of educational and social backwardness. The social and political climate has radically changed in the country from what it was in 1950 or 2000. However, notwithstanding, an increasing role of the market and the NGOs as institutions of modernization and progress in the country, the State continues to have a leading say in transformation of society to make it just and equal. The question is, not only of the extent to what reservation in Government employment can really change things for the better, but how it could, in order to benefit the socially, educationally and economically backward ones.

Our preferential policies in government employment was initially confined to persons belonging to scheduled castes and schedules tribes. After acceptance of Mandal Commission Report by the Government of India in the year 1990, this got extended to eligible candidates hailing from other notified backward classes as well.

One of the advantages of affirmative action has been improvement in the distribution of opportunities among the dalits and backward classes. Ordinarily children of poor and lower status parents get lower level jobs and consequently lower salaries and income. The reservation of jobs at all levels has ensured that the children of dalits and backward class parents are selected for All-India services like the IAS and the IPS. The advantage, however, has not as yet percolated to the entire community of poorer and lower status parents.

In the scheme of affirmative action that the Constitution provides, the State has been authorized to make special provision not only for the advancement of socially and

educationally backward classes of citizens, for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes but also for women and children. Significant measures have been taken in this regard during the last sixty years. One such step relates to reservation of seats for women in local bodies.

Today India has 3.3 million elected representatives in Panchayats in nearly half a million villages out of whom over one million are women. Sensitively enough in the era of growing role of the private sector, the State is demanding the private sector to adopt affirmative action policies. The developments in this area would lead to greater empowerment of the people and would also have a positive bearing on social responsibility sensitivities of the private sector. We have to keep it in view that exclusion will sooner or later destablise the system.

We have more than 200 million people below the poverty line. This poverty line indicates that the income of the people below poverty line is not high enough for adequate nutrition. There is high concentration of persons below poverty line in the large and poorer States of the North and the East. The need is to identify persons below poverty line correctly and computerise the list. It would be possible to then to give economic advantages to them. This economic criteria will naturally cut across religion and caste lines, among rich and poor States, and also between rural and urban areas.

Empowerment of the poor people would create new demands and pressures on services and these would be in nature of quality. An effective administrative system alone can manage these new demands. We are living at a period of time that encouraged by affirmative action incorporated into the Constitution about Scheduled Castes, Scheduled Tribes and Other Backward Classes several communities are demanding similar facilities. Recent happenings have shown signs of degenerating into street conflicts and civil wars. All these constitutional steps of empowerment are within a frame. The need is to look at the frame itself now and to take such corrective measures as would be necessary to allow the fruits of affirmative action reach those who need it.

Generation of gainful employment for the youth is the most challenging task facing India's political economy. India's working age population is over 50 per cent. This share will continue to rise and reach 60 per cent in 2050. A fast-growing working population will ensure more workers, more saving and hence more investment. This mechanistic view of growth.

Capacity building at all levels of an organization is widely perceived as the most important approach to achieve quality of services and customer's satisfaction. The concept of capacity building in public administration heavily relies upon professionalism of the civil service. There is increasing awareness about the low level of professional quality of public servants employed in districts and in rural areas. The most crucial element in capacity building is leadership. Good leadership aimed at improvement of organizational culture is integral to capacity building.

Capacity building does not mean that the staff is free to define what they will do when, where and how. This is obviously wrong. Capacity building demands staff to behave responsibly and produce desired and agreed upon results. It means a collegiate effort in which an individual or an organization could be made accountable and responsible for any action that they take.

Access to information, participation, innovation and accountability are needed to build an environment for capacity building. In traditional organizations, information is the preserve of higher level bureaucracy. This system needs to be broken to allow people to get whatever information they need to perform their task. The staff should be encouraged to actively participate in the task of the group.

REFERENCES

1. J.J. Roussean, (*The Social Contract*, Bk.III, Ch.iii to viii, in Social Contract, 'World's Classics', No. 511, Oxford).
2. G.D.H. and Margaret Cole, (*A Guide to Modern Politics*, Gollanez, 1934).
3. Ivor Jennings, (*Cabinet Government*, Cambridge University Press, Cambridge, 1951.)
4. D.D. Basu, (*Commentary on the Constitution of India*, 2 Vols., S.C. Sarkar and Sons Ltd., Calcutta, 1955-56.)
5. Granville G. Austin, (*The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*, Clarendon Press, Oxford, 1966).
6. Rajni Kothari, (*Politics in India*, Orient Longman Ltd., New Delhi, 1970 and *Rethinking Democracy*, Orient Longman Ltd., New Delhi, 2005).
7. Lloyd Rudolph and Suzanne Hoeber Rudolph, (*In Pursuit of Lakshmi*, University of Chicago Press, Chicago, 1987.)

8. Partha Chatterjee, (*Nationalist thought and the Colonial World: A Derivative Discourse*, Zed Books for the U N University, 1986).
9. Francine Frankel, Zoya Hasan, Rajeev Bhargava, and Balveer Arora (eds.), (*Transforming India: Social and Political Dynamics of Democracy*, Oxford University Press, New Delhi, 2000).

***

Volume - II January - March 2012 *ISSN 2277-5587*

Key Success Factors For Knowledge Management

Vandana sachdeva
Asst. Professor,
Department of Management Study
IIS University Jaipur

The recent advances in the merging field of computing and high-speed communications have increased the organizations interest in the topic of KM. This growing field is categorised with the Information and Communication Technologies (ICTs).

With increasing capabilities of ICTs, an understanding of different knowledge strategies has become much more important. Strategies to investigate Knowledge Management (KM) would be to increase the level of social interaction that occurs in the organization, as only some of which may be technologically assisted. ICTs provide information and knowledge sharing with a new dimension. The growth of 'knowledge management' as a strategy of consultancy companies is one of a series of such strategies dating from 'scientific management' of the early stage.

KM is the process through which organizations extract value from their intellectual assets". By adopting this belief of KM, the following definition of KM is suitable. Part of the last century. 'Time and motion study' developed directly out of scientific management and continued into the 1970s as a widespread industrial application.

'Knowledge' and 'information'

"KM is the process through which organizations extract value from their intellectual assets". By adopting this belief of KM, the following definition of KM is suitable. "Knowledge Management caters to the critical issues of organizational adaptation, survival and competence in face of increasingly discontinuous environmental change. Essentially, it embodies organizational processes that seek synergistic combination of data and information processing capacity of information technologies and the creative and innovative capacity of human beings".

Classification of knowledge management is made in two dimensions:

1. To manage existing knowledge, which includes developing of knowledge repositories (memos, reports, presentations and articles), knowledge compilation, arrangement and categorization.

2. To manage knowledge-specific activities, that is, knowledge acquisition, creation, distribution, communication, sharing and application of those assets.

Knowledge modelling plays a crucial role in the achievement of these goals. In practice, knowledge management often encompasses identifying and mapping intellectual assets within an organisation, generating new knowledge for competitive advantage, and making vast amounts information accessible, considering and enabling all of the above. KM is the process through which organizations extract value from their intellectual assets". By adopting this belief of KM, the following definition of KM is suitable.

Knowledge management consists of the administration of knowledge assets of an organisation and the, sharing and enlargement In management consultancy it is, perhaps, not too serious to fail to distinguish between related concepts (although I suspect that management researchers would not be happy with this proposition), but for the fields of information science and information systems, it is clearly necessary for us to distinguish between 'information' and 'knowledge'.

Failure to do so results in one or other of these terms standing as a synonym for the other, thereby confusing anyone who wishes to understand what each term signifies. it is quite easy to distinguish between 'knowledge' and 'information' in such a way as to remove ambiguity and, at the same time, demonstrate the fundamental nonsense of 'knowledge management'. 'Knowledge' is defined as what we know: knowledge involves the mental processes of comprehension, understanding and learning that go on in the mind and only in the mind, however much they involve interaction with the world outside the mind, and interaction with others. Whenever we wish to express what we know, we can only do so by uttering messages of one kind or another - oral, written, graphic, gestural or even through 'body language'. Such messages do not carry 'knowledge', they constitute 'information', which a knowing mind may assimilate, understand, comprehend and incorporate into its own knowledge structures. 'knowledge management' is, at its centre, a movement driven by management consultancies, it can be useful to look at some of these consultancies to discover what 'knowledge management' means to them.

KM Strategy, ICTs and KM-tools

In the E-Economy, today's competencies become tomorrow's core rigidities with unprecedented speed. Under these conditions, it is incumbent upon companies to ruthlessly reconsider the value of established processes and ways of doing business, to gear

the organization towards purposeful attendance of its most valued asset – its knowledge base. Best practices should be shared within the company's network, though it is understood that in the current, networked, e-Economy, companies that harvest and hoard their knowledge will be at a competitive disadvantage. Companies today live in knowledge ecologies where one company feeds knowledge into another. What counts is a networked approach to Knowledge Management, involving internal as well as external parties.

Today organizations often have electronic directories and databases to nurture these knowledge phases. The working definition of knowledge is that Knowledge must involve an agent, who uses knowledge to perform actions necessary to reach a goal. Knowledge can and should be evaluated by the decisions or actions to which it leads.

KM in Practice

Knowledge is that Knowledge must involve an agent, who uses knowledge to perform actions necessary to reach a goal. Knowledge can and should be evaluated by the decisions or actions to which it leads. When knowledge is of essential importance for the realisation of the strategic goals of the organisation, such organisations are called knowledge intensive. The level of knowledge orientation of an organisation is based on seven characteristics: strategy, organisational structure, technology, performance measurement, HRM, culture and level of explicitness of knowledge. The most usual knowledge problems are unbalanced distribution, fragmentation, unavailability and inaccessibility of knowledge. The Key Success Factors of implementing Knowledge Management in organizations are: - Culture, KM Organization, Strategy, Systems & Infrastructure, Effective& Systematic Processes and Measures.

Key Success Factors

Popular Theory& Practice

A key success factor is a performance area of critical importance in achieving consistently high productivity. There are at least two broad categories of key success factors that are common to virtually all organizations: business processes and human processes. Both are crucial to building great companies. Our focus is on the human process areas. Every organization and company has its own definition of knowledge and how it should be gathered, categorized and made available to employees.

The success factor organization describes that the value of knowledge creation and collaboration should be intertwined throughout an enterprise. Operational processes must align with the KM framework and strategy, including all performance metrics and objectives. While operational needs dictate organizational alignment, a KM system must be designed to facilitate KM through out the organization. Technology enables and provides the entire infrastructure and tools to support KM within an enterprise.

Conditions for success

The success of the initiative is ultimately determined by sufficient combination of the above-mentioned factors and their incorporation within the line organization. Successful implementation requires not only that knowledge is collected and distributed, but also, more importantly, that knowledge within the organization is easy to use in daily processes, that it is accurate and up-to-date, and that people can quickly contact subject matter experts for feedback and questions. Often the knowledge processes required and the level of organization needed are fragmented and incomplete, endangering the momentum created by the initiative in the organisation. Focus on implementing the continuous and demand-drive knowledge processes needed for the knowledge area at hand, and ensure enforcement of the necessary roles and goals within the organisation, without additional staffing needs.

Conclusion

The inescapable conclusion of this analysis of the 'knowledge management' idea is that it is, in large part, a management fad, promulgated mainly by certain consultancy companies, and the probability is that it will fade away like previous fads. It rests on two foundations: the management of information - where a large part of the fad exists (and where the 'search and replace marketing' phenomenon is found), and the effective management of work practices.

1) A Culture of pervasive knowledge sharing needs to be nurtured enabled within and aligned with organisational objectives. The underlying concern is employees do not want to share information. Successful organisations empower employees to want to share and contribute intellectual information, by rewarding them for such actions. And, with organisational leaders role models of information sharing and interface regularly with staff, teams and stakeholders in review sessions and openly talk about successes and failures.

2) KM Organization: The first important variable is leadership with a vision, strategy and ability to promote change of the management to a compelling knowledge management actively promoted by the Chief Executive that clearly articulates how knowledge management contributes to achieving organizational objectives.

3) Effective& Systematic Processes creating a “knowledge environment” with processes to capture the knowledge assets of the organization is important, but it will probably be most successful once most of the technologies of electronic commerce have been implemented.

Finally the Measures the success of knowledge management can be measured against pragmatic milestones, such as the creation of products, the development of new clients and an increase in sales revenue.

References

1 Abell, A. and Oxbrow, N. (2001) Competing with Knowledge, the information professional in the knowledge management age. Library Association Publishing, London.

2 Bell, D. (1973). The Coming of Post-industrial Society. Basic Books, New York, NY.

3 Bhatt, G. (2002). “Management strategies for individual knowledge and organizational knowledge”. Journal of Knowledge Management, Vol. 6 No. 1 2002 pp. 31-39

4 Becker, M.C. (2001) Managing dispersed knowledge: organizational problems, managerial strategies, and their effectiveness. Journal of Management Studies, 38(7), 1037-1051

5 Bukowitz, W. & Williams, R. (1999a) The knowledge management fieldbook. London: Financial Times/Prentice Hall.

6 Drucker, P. F. (2000). “Management Challenges for the 21st Century”. International Journal of Contemporary Hospitality Management. Vol. 12, No. 6, p. 238-247.

7 Marshall, C., Prusak, L. and Shpilberg, D. (1996). “Financial Risk and the Need for Superior Knowledge Management”. California Management Review, Vol. 38, No. 3, Spring.

8 Mayo, Elton (1933) The social problems of an industrial civilization. New York, NY: Macmillan.

9 Porter, M.E. and Millar, V.E. (1985). “How Information gives you competitive advantage”. Harvard Business Review. Jul-Aug, p. 149

10 Sanchez, R. (2001). Knowledge Management and Organizational Competence. New York: Oxford University Press.

11 Sutton, D. C. (2001). What is knowledge and can it be managed? European Journal of Information Systems, 10(2), 80-88.

12 Taylor, Frederick W. (1911) The principles of scientific management. New York, NY: Harper Bros.

***

Volume - II January - March 2012 *ISSN 2277-5587*

The Strategic Implications of Enterprise Risk Management : A Framework

Dr. Sachin Gupta
Assistant Professor, Dept. Of Management Studies
IIS University, Jaipur

In today's competitive business environment, business entities are faced with greater uncertainties (risks and opportunities) as they strive to create value. And in the quake of the current global economic crisis, businesses in a bid to stay competitive have taken several crucial measures. Some businesses have cut-down on the number of staff tremendously to save cost in a bid to survive (one of such businesses is British Telecom; a Telecom giant which cut 15,000 jobs after making a £1.3bn loss1), some shut-down offices, branches, divisions, or plants within their business enterprise due to drastic reduction in the demand for their products/services (such is the case of Honda motors which shut-down its plant at Swindon for four months from February to May 20092), and the going „burst of several businesses due to the inability to repay their debt (an example is Woolworths which closedown, closing its 807 British outlets and leaving over 27,000 people unemployed3). These have led managers and investors in recent times to pay more attention to managing the risks inherent and emerging in their businesses.

It is therefore of great importance for businesses to take advantage of making appropriate strategic decisions on uncertain outcomes, as at worse it would cut-down losses due to disaster and at best, improve profitability in cases of opportunities. "Uncertainties present both risks and opportunities, with potential to erode or enhance value."4 The sources of uncertainties with adverse effects/outcomes (the probability of which is defined as risk) are described as due to the volatility/complexity/heterogeneity of risk; the impact of external events (such as customer preferences, competitors strategies, and so on), the response to external events/developments (such as compliance to policies/regulations/ standards, development of strategies, and so on), and the behavior of employees is as well crucial. Some of the risks covered in this research include capacity expansion risk, diversification, vertical integration, financial, marketing, and human resources.

The Relevance: A Need for Enterprise Risk Management:

The recession has forced businesses to place more focus on the management of risks relating to all aspects of their businesses. Such management is broadly defined as

"Enterprise Risk Management" ERM, which describes the set of activities that businesses undertake to deal with all the diverse risks that face it in a holistic/strategic/integrated method. These risks include financial, strategic, operational, hazardous, and compliance risks, spanning through the organization. Many of such risks have significant impact on the profitability, effectiveness, and reputation of business enterprises. In the 21st century, there are several checkpoints that have considerably driven the need for enterprise risk management, which today is referred to as drivers of ERM, this includes increase in the following:

- Greater transparency (Corporate Governance)
- Security and technology issues
- Business continuity and disaster preparedness
- Focus from rating agencies
- Regulatory compliance (laws and regulations)
- Globalization in a continuously competitive environment

UNDERSTANDING ENTERPRISE RISK MANAGEMENT

Uncertainty in business and life in general is said to exist due to the futuristic nature of outcomes. The outcomes of business operations are to be reached at sometime in the future after the tasks have been performed. And even in situation where a high level of certainty exists towards the achievement of positive outcomes, a sudden disastrous event may occur to change this fate. Barton T. L. et. al. sheds light on the „risk debacles which the business community has witnessed that have resulted in considerable decrease in shareholder value, financial loss, damage of company reputation, so on13. They point out that such events may include environmental disaster, mergers destroying shareholder value, organizations trading in complex derivative instruments without the understanding of the„risks involved, traders lacking oversight and have inadequate controls for the enormous risks they assume, etcetera, while placing emphasis on the attention and handling of such „risks.

What is Enterprise Risk?

Currently, the need for corporate governance, internal control (as well as the compliance to rules and regulations) and risk management have been of critical concern to businesses as experts call for the integration of all three with a single management

approach referred to as the integrated GRC. However, the solution came as „Enterprise Risk Management, as it emphasizes on all three aspects within its process of application. Experts point at the recent financial crisis and the related economic downturn, and the failure of risk management to help the situation as further backing for the reevaluation of the discipline for a change to a more co-coordinated (wider scoped) risk management approach that recognizes the interdependencies of risks. Again, Enterprise Risk Management is described as the solution to this challenge. Enterprise risk is the aggregate of all functional and process risks a business entity faces in the course of carrying out its business activities. Such risks would include the types described by Casualty Actuarial Society given below: Hazard risk, Financial risk, Operational risk and Strategic risk.

The holistic approach that characterizes the present trend of risk management, referred to in some text as enterprise-wide risk management, enterprise risk management (ERM), strategic risk management, or integrated risk management, is aimed at dealing with uncertainty for the organization. The rationale behind this approach is that value is maximized when the decision-makers sets strategy and objectives to strike an optimal balance between growth and return goals, and the related risks, and efficiently and effectively allocate resources in pursuit of the entity's objectives. Barton et. al. stated that the goal of this new approach is to create, protect, and enhance shareholder value by managing uncertainties that could influence the achievement of organizational objectives. Enterprise Risk Management is clearly distinguished from risk management and financial risk.

The Enterprise Risk Management Framework :

Enterprise Risk Management Integrated Framework is the most commonly used framework to guide risk management efforts. In the perspective of experts, the only rival to this is the revised ISO 31000 standards published in late 2009. In managing risks, these ERM frameworks must identify and analyze it, and then take one of the following actions:

- Avoidance of risk by aborting actions that contributes to risk
- Reduction of risk by reducing the likelihood or impact of risk
- Share or insure risk by transferring or sharing a portion of the risk (impact)
- And Acceptance of risk by taking no action as a result of a cost/benefit decision

The challenges/issues of the traditional risk management approach:

The major issue is the persistent contextual myopia in risk management, concentrated solely on hazard risk; risk management has been a disconnected function,

risks do not always fit into categories quite neatly. An example would be business interruption at a plant; this has finance, marketing, and reputation implications beyond the effects on production and also, the applicability of the property insurance policy. The growing recognition that co-coordinating and financing all facets of organizational risk effectively, is critical for the maximization of success.33 Scholars have observed that it cost much more to manage risk individually. The challenge of having a focus on narrow concerns, a fragmented approach toward risk Management has its solution in the understanding of the wider scope of risks being faced. Establishing, maintaining, and implementing a new approach having:

- An organization-wide awareness of risk management
- The channels for communication of risks
- The methods, tools and practices for managing risk
- The ways to measure operational and financial risk
- The organizational risk map
- The risk financing mechanisms
- The measurements of risk management effectiveness

Enterprise Risk Management helps run an Extended Business network :

In recent times, it has become clear that it is not enough to manage the business supply chain effectively and efficiently as a disruption in business activities in remote points of a business value chain may have substantial adverse effect on it due to the bullwhip effect. The management of both the downstream and upstream stakeholders of your supply chain becomes essential if you are to have a stable supply chain. Thus, by extending your business network you not only manage Supplier and Customer relationships, you also aim at monitoring, and supporting de-risking their activities as it affects your business. In such a case, we look at ERM as managing an enterprise that comprises of all the substantial enterprises that make-up the value-chain of the business.

Challenges and Issues in Implementing ERM:

According to the article titled “Implementing Enterprise Risk Management: Getting the fundamentals Right” by Jerry Micolism of Briston Eaton Associates, Inc. and published on the International Risk Management Institute, Inc., Micolism throws light to some of the major issues regards the implementation of ERM. He reports that while most

companies believe in the concept of ERM, many are frustrated by the implementation issues which has apparently not made their ERM practice beneficial, as it potentially is. The Committee of Sponsoring Organizations of the Tread way Commission (COSO) reports that amongst the most critical management challenges is the determination for how much risk an organization is willing to take and does accept as it furthers its goal of value creation.

ENTERPRISE RISK MANAGEMENT PROGRAM IN ACTION:

Risk Owners are responsible for the risks within the processes they manage and are given Appropriate authority, tools, and resources to manage and report such risks within certain levels of severity (as defined by the business policies on risk management). Otherwise, risk issues are escalated to the next higher level of management while informing the Enterprise Risk Management Office, ERMO, that an issue has been escalated to create a risk-awareness and support if deemed necessary at this point. Until, if not addressed by subordinate management levels, it gets to the level of the ERMO, the final stop, as at this stage it is brought to the table with the Board of Directors for appropriate action. The ERMO does not make the decisions, but offers Risk Information, RI, on the options available to be taken. Risk Reporting is integrated into periodic reporting, but may be reported at anytime due to an exception an emergence of risk which must be managed quickly either due to its severity or time dependence.

RECOMMENDATIONS TO ORGANISATIONS:

- Organizations planning to implement ERM should pay great attention to cultivate a risk Culture that supports their objectives
- Such organizations while considering the cost of implementing ERM should factor in,
- Mandatory, the cost of acquiring an ERM expert for specialist support, guidance, and
- Training.
- The use of policies and regulations in describing management's position, and seminars, on the job training, coaching, mentoring, and workshops in developing and training staff to adopt ERM, thus, building a risk management culture should be complemented with more of social meetings, opinion sharing exercises (as a way to gain staff commitment by involvement), as well as the introduction of a risk-reward system to encourage members of staff.

- In other to introduce the risk-reward system, it is advisable that ERM processes are fully Integrated into the daily activities, and within the measurements for performance should also Be integrated.

FOR THE ERM DISCIPLINE:

- As there is no "one-size-fits all" framework or process for ERM, and frameworks are Becoming more and more universal to covering sectors and industries making its Interpretation require more skill, it is suggested that these frameworks are accomplished by a bulk of samples of models of it applies in all areas where it is applicable, so as to give the team implementing the framework a rough idea of an applicable best practice for such a framework and so it can be effectively understood (beforehand, to save time and cost due to delays and failures) and properly utilized. This would help organizations understand and adopt the ERM process early enough rather wait till they are in trouble as is the case today.
- A cost effective and less complex framework should be created for SME taking into Consideration the scope, cost and simplicity of their operations (since they are the life- line of any nation). And such information within the SME, specific to sectors, industries, and including the relationship to their size, capabilities, and so on, should be included.

Bibliography

1. Busman, E. R. (1998) *Risk Management -The Challenge Ahead: Adopting an enterprise wide approach to risk.*
2. Casualty Actuarial Society (2003)*Overview of Enterprise Risk Management* [online] available from<www.casact.org/research/erm/overview.pdf>[27 July 2009]
3. NERAM (2003) *Workshop Report: Basic Framework for Risk Management*
4. The Committee of Sponsoring Organisations of the Treadway Commission (2004) *Enterprise Risk Management Integration Framework* Durham: AICPA

***

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

SHODH SHREE

(JOURNAL OF MULTIDISPLINARY RESEARCH)

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, jaipur-302018
shodhshree@gmail.com
Chief Editor - Virendra Sharma
Co Editor - Dr. Ravindra Tailor

Membership No…………………… Date……………………

(For Office Use Only)

Membership Form

Name Prof./Dr./Ms./Mr…………………………….… Designation....……………

Name of Organization ……………….…………………………………………..

Mailing Address …………………………………………….…………………

District……………………….......... State ....……………………

Tel. No (Res)………….......…… Mobile No. ………………………………….

E-mail Address ……………………………………….………………………

Annual Membership Individual / Institutional fee can be deposited through online Banking.

Date Signature

----

1. Required Font For Publishing Kruti Dev-010 (For Hindi) or ,Times New Roman (For English)
2. Annual Membership Fees 800 Rs(For Individual) and Rs 1200 (For Institution)
3. Research Paper may be Sent through By email, post or C.D.
4. For any assistance, please contact - 09413224134

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I ....
hereby declared that the paper entitled ' ....
....' is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with ....
.... which is exclusively for your Journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same except one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first.

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other Journal or book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. ....

E-mail Address ....